श्रीवत्स

(नाटक)

लेखक –

प्रो० श्रीकैलाशनाथ भटनागर, एम० ए०

ग्रन्थ संख्या—

प्रकाशक तथा विक्रेता

भारती-भण्डार

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

द्वितीय संस्करण

मूल्य १॥)

सं० २०००

मुद्रक—

कृष्णाराम मेहता,

लीडर प्रेस, प्रयाग।

प्राक्कथन

राष्ट्र की मर्यादा उसकी संस्कृति में निहित है। युग युग की साधना से जन-समुदाय जिस बौद्धिक विकास की चरम सीमा तक पहुँचना चाहता है, उसी विकास की प्रेरणा में संस्कृति की रूप-रेखा का निर्माण होता है। अतः यह संस्कृति किसी भी देश की अनवरत तपस्या की शक्ति होती है जो आगामी सन्तति के लिए पथ-प्रदर्शन का काम करती है। जिस प्रकार एक वृक्ष दूर तक फैली हुई जड़ों से रस प्राप्त कर अपनी ऊँची से ऊँची डाल के पत्तों में जीवन का संचार करता है उसी प्रकार राष्ट्र भी अपने अतीत की संस्कृति से शक्ति प्राप्त कर भावी जीवन को समुन्नत करने में समर्थ होता है। और जिस प्रकार वृक्ष की जड़ कट जाने से वह सूख जाता है उसी प्रकार राष्ट्र भी अपनी संस्कृति से हट कर अपना विनाश कर लेता है। इस प्रकार राष्ट्र और संस्कृति का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। अपनी परम्परा में राष्ट्र उस इतिहास को सुरक्षित रखता है जिसमें उसके विकास की मूल प्रेरणाएँ छिपी रहती हैं। यह सच है कि अवसर के अनुकूल राष्ट्र अपने नवीन आदर्श बनाता चलता है लेकिन वह अतीत साधना की सात्विक भावनाओं का त्याग नहीं कर सकता। इस त्याग में उसकी सात्विक तपस्या की उपेक्षा है।

भारतवर्ष की संस्कृति का इतिहास जितना प्राचीन है, उतना ही दिव्य और प्राणमय है। वेद और उपनिषद् काल की साधना इतनी गौरवमयी है कि उससे कोई भी राष्ट्र आत्म-बोध की गहरी अनुभूति प्राप्त कर सकता है। आत्म-विश्लेषण की श्रद्धा और भक्ति में जो पौराणिक कथाएं लिखी गई हैं उनसे हमारे धर्म और दर्शन के सिद्धान्तों को बल मिला है। अतः हमारे अतीत का इतिहास हमारी संस्कृति का

ऐसा इतिहास है जिसमें मनुष्यत्व का सबसे पवित्र और उन्नत मनो-विज्ञान है। यदि हमारा राष्ट्र संसार के इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखना चाहता है तो उसे अपने आदर्शों को सजीव रखने की चेष्टा में प्रयत्नशील होना चाहिये।

प्रस्तुत नाटक हमारे भारतीय इतिहास के महान आदर्शों का एक संवाद है। श्रीवत्स की न्यायप्रियता और कष्ट सहन करने की क्षमता, रानी चिन्ता के पवित्र जीवन की अलौकिक शक्ति, लक्ष्मी के शब्दों में संसार की परिभाषा—'यह संसार कर्मभूमि है, कर्म ही संसार-सागर को पार कर जाने की एकमात्र नौका है। अतएव सत्कर्म तुम्हारे जीवन का आदर्श रहे, यही मेरी इच्छा है।' आदि मनुष्यत्व को ऊँचा उठाने की साधनाएँ इस नाटक में हैं। इस नाटक की कथा से ज्ञात होता है कि मनुष्य अपना विकास यहाँ तक कर सकता है कि देवता भी अपना न्याय कराने के लिए उसकी शरण में आ सकते हैं! मनुष्य अपनी शक्ति पर विश्वास कर 'भाग्य की नदी' कितनी सरलता से पार कर सकता है! नारद के शब्दों में श्रीवत्स और चिन्ता ने संसार के सामने कितना महान आदर्श रक्खा! 'तुम्हारी उदारता और न्यायपरता पर इन्द्र भी मुग्ध हैं। यह घटना संसार में सदा अमर रहेगी। कष्ट में पड़े हुए मानव तुम्हारा नाम स्मरण कर धीरज पायेंगे। पुत्री चिंता, तुम्हारा नाम नारी जाति के लिए पति-प्रेम और सहन-शीलता का आदर्श स्थापित रक्खेगा। तुम पर लक्ष्मी की सदा कृपा रहे!' इस प्रकार सात्त्विक प्रवृत्तियों ही में मानव-चरित्र का विकास हुआ है जो संसार के लिए अनुकरणीय है। नाटक की भाषा सरल और मुहावरेदार है। स्थान स्थान पर संगीत से मनोविज्ञान और वातावरण की सृष्टि की गई है। 'हे वायु बही पुरवैया', 'तोते, क्या सुख है बंधन में ?' 'कलियो, तुम क्यों मुसकाती हो ?' 'मेरा भी छोटा-सा घर हो' आदि बड़े सुन्दर गीत हैं।

श्री कैलाशनाथ जी भटनागर, एम० ए०, संस्कृत और हिन्दी के विद्वान हैं प्रोफ़ेसर हैं। उन्होंने साहित्य का अध्ययन कर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं जिनसे उनके अगाध पाण्डित्य का परिचय मिलता है। वे एक सफल-लेखक हैं। अपनी कुशल लेखनी से उन्होंने इस प्राचीन कथा-वस्तु में नवीन शैली से सजीव मनोविज्ञान की प्रतिष्ठा की है। अपने देश के महान आदर्शों की कथा को इस सुन्दर रूप में प्रस्तुत करने में वे सफल हुए हैं। यह पुस्तक यदि पाठ्य-क्रम में निर्धारित कर दी जायगी तो हमारे विद्यार्थियों को साहित्य के साथ ही साथ अपनी संस्कृति की उच्च कल्पना भी मिल सकेगी। आशा है, श्री भटनागर इसी प्रकार हिन्दी की श्री-वृद्धि करते रहेंगे।

हिन्दी विभाग,
इलाहाबाद यूनीवर्सिटी
१०-१-४१

(डा०) रामकुमार वर्मा
एम० ए०, पी-एच० डी०

पात्र

पुरुष

इंद्र	देवराज
नारद	एक देवर्षि
शनि	सूर्य का पुत्र
श्रीवत्स	प्राग्ज्योतिषपुर के राजा
प्रधान-मंत्री	श्रीवत्स के प्रधान-मंत्री
पुरोहित	श्रीवत्स का पुरोहित
ज्योतिषी	लकड़हारों के गाँव का ज्योतिषी
सेठ	नाव का स्वामी
बाहुदेव	सौतिपुर-नरेश

नागरिक, माँझी, ग्रामीण, लकड़हारे, बालक, दुर्गादेवी के उपासक, राजकुमार, भाट, मंत्री बाहुदेव के कर्मचारी इत्यादि।

स्त्री

उर्वशी, मेनका, रंभा	अप्सराएँ
चिंता	श्रीवत्स की रानी
सरला, सुशीला	चिंता की सखियाँ
सुरभी	स्वर्गीय कामधेनु
भद्रा	सौतिपुर-नरेश की पुत्री और श्रीवत्स की दूसरी रानी

ग्रामीण स्त्रियाँ, सुर-बालाएँ, मालिन, भद्रा की सखियाँ इत्यादि ।

श्रीवत्स

पहला अंक

पहला दृश्य

स्थान—इंद्रपुरी में इंद्रदेव का विश्राम-भवन

समय—संध्या से पूर्व

(इंद्र रत्न-खचित स्वर्णमय सिंहासन पर विराजमान हैं। दूर तक रत्नांबर बिछा हुआ है। कई स्थानों पर सुगंध-पात्रों में से सुवासित धुएँ के बादल उठ रहे हैं। अप्सराएँ नृत्य कर रही हैं।)

(गीत)

आओ सुख के गाने गाओ !

नभ में विहग चहकते आते,
मधुर मिलन के गाने गाते,
गगन-भूमि निज हृदय मिलाते,

तुम भी आओ, हृदय बिछाओ !
आओ सुख के गाने गाओ !

तारों से नभ भर जाएगा
मधुर सुधा शशि बरसाएगा
भू पर ज्योत्स्ना फैलाएगा

आओ तुम भी स्मित छिटकाओ
आओ सुख के गाने गाओ !

देखो स्वप्न सुखद यौवन के,
भार उतारो सारे मन के
खोलो, बंधन निज जीवन के
अंतर का अनुराग जगाओ।
आओ सुख के गाने गाओ।

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल—जय देवराज की ! महर्षि नारद पधारे हैं।

इंद्र—सादर ले आओ।

द्वारपाल—जो आज्ञा। [प्रस्थान

इंद्र—उर्वशी, मेनका, रंभा ! बस, अब अपनी साथिनों को ले जाकर विश्राम करो। [अप्सराओं का प्रस्थान

(नेपथ्य से गीत का शब्द सुनाई देता है)

नारायण नारायण बोल।
रे नर, मन की आँखें खोल।

(एक ओर से महर्षि नारद द्वारपाल के साथ आते दिखाई देते हैं। वे वीणा बजा रहे और तान छेड़ रहे हैं)

रत्न जगत के झूठे सारे,
भक्ति-भाव है सच्चा प्यारे,
हरि का नाम कभी न भुला रे,
नाम-रत्न सबसे अनमोल।
नारायण नारायण बोल।
रे नर, मन की आँखें खोल।

इंद्र—(यथोचित अभिवादन के अनंतर) कहिए, महर्षि ! आज इधर कैसे भूल पड़े ?

नारद—देवराज ! हमें तो नित्य भ्रमण लगा रहता है। कभी यहाँ आ रमे, कभी वहाँ। कभी शीघ्र आ गये, कभी विलंब से।

इंद्र—आप धन्य हैं जो मर्त्य-लोक में गृहस्थियों को दर्शन देकर कृतार्थ करते हैं और उनके कानों तक स्वर्ग का संदेश पहुँचाते हैं।

नारद—लोग तो आपके दर्शनों को लालायित रहते हैं, भला मैं क्या हूँ ? मुझे तो एक लोक से दूसरे लोक का संदेश-वाहक कहा जाता है।

इंद्र—वाह वाह ! आप जितना देवता तथा मनुष्यों का उपकार करते हैं उतना और कोई न करता होगा। आपके सद्वचनों से कई जीवन पलट गये, अज्ञानी ज्ञानी बन गये और नास्तिक आस्तिक।

नारद—देवराज ! यह तो सब देव-लीला है।

इंद्र—देव-लीला ही कहो, परंतु महर्षि ! आपका इसमें बड़ा हाथ है। कहिए, इस समय किस भूमि को पवित्र करके आ रहे हैं ?

नारद—इस समय तो, सुरेश ! मैं प्राग्देश से आ रहा हूँ। वाह ! क्या ही सुंदर देश है ! और श्रीवत्स कैसे न्याय-शील हैं, दान-शील हैं, धर्म-शील हैं,...

इंद्र—एक साथ ही इतने शील ?

नारद—जी हाँ, श्रीवत्स को न्याय और शील की तो साक्षात् मूर्ति समझिये, दान-धर्म उस मूर्ति के प्राण और पुण्य-कर्म उसकी आत्मा !

इंद्र—महर्षि, इस पृथ्वी लोक पर एक से एक बढ़ चढ़कर राजा हैं, श्रीवत्स से कई बढ़ कर ही होंगे।

नारद—मैंने तो सब राज्यों का भ्रमण किया है, इंद्रदेव ! मुझे इस समय श्रीवत्स से बढ़कर न्याय-शील कोई राजा नहीं दिखाई दिया।

(बाहर से किसी के झगड़ने का शब्द सुनाई देता है)

इंद्र—(चौंककर) यह कोलाहल कैसा ?

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल—जय सुरेश की ! लक्ष्मी देवी और शनिदेव किसी विशेष कार्य से पधारे हैं।

इंद्र—तो यह झगड़ने का कैसा शब्द है ?

द्वारपाल—देवराज ! वही झगड़ रहे हैं और आपके दर्शनों के उत्सुक हैं।

इंद्र—(उत्सुकतापूर्वक) वे झगड़ रहे हैं ? अच्छा, आने दो।

द्वारपाल—जो आज्ञा। [प्रस्थान

इंद्र—लक्ष्मी देवी और शनिदेव को मुझ से क्या विशेष कार्य आ पड़ा ? भला वे किस लिए आये होंगे ?

नारद—आपका देवराज नाम सार्थक करने के लिए......

(लक्ष्मी और शनि का प्रवेश। उचित शिष्टाचार के पश्चात)

शनि—(उत्तेजित होते हुए) देवाधिदेव ! हमारा निर्णय कीजिए कि हम दोनों में कौन बड़ा है।

इंद्र—(सविस्मय) इस प्रश्न का अभिप्राय क्या है ?

शनि—सुरेश ! लक्ष्मी देवी ने मेरा घोर अपमान किया है।...

(इंद्र लक्ष्मी की ओर देखते हैं)

लक्ष्मी—देवराज ! शनि ने मेरा घोर अपमान किया है।

इंद्र—(सविस्मय) दोनों कहते हो कि मेरा घोर अपमान किया है। बात क्या है ?

शनि—लक्ष्मी ने मुझे कई अपशब्द कहे हैं।

इंद्र—अपशब्द ! बात खोलकर कहो।

शनि—लक्ष्मी ने मुझे कहा है कि जैसा तुम्हारा काला रंग है वैसा ही तुम्हारा हृदय। जैसा तुम्हारा स्वभाव वक्र है, आत्मा वक्र है, वैसा तुम्हारे नाम के ग्रह की वक्र-गति से स्पष्ट है।

इंद्र—लक्ष्मी ! अब तुम कहो।

लक्ष्मी—देवराज ! शनि ने मेरे चरित्र पर लांछन लगाये हैं। इसने मुझे अज्ञात-कुलजा, कुलटा और चपला कहकर मेरा घोर अपमान किया है। ये अपशब्द सुनने पर मैंने भी वे शब्द कहे हैं।

इंद्र—तो, शनि ! पहले तुमने अपमान किया ?

शनि—नहीं, लक्ष्मी ने।

लक्ष्मी—नहीं, शनि ने।

नारद—(सविस्मय) यह क्या समस्या है ? नारायण ! नारायण !!

इंद्र—शनि ! लक्ष्मी आप पर अभियोग लगाती हैं, आप उन पर। बात सुलझाकर कहो।

लक्ष्मी—शनि ने देवताओं के सामने कहा है कि लक्ष्मी अज्ञात माता-पिता की संतान है, स्वभाव से कुलटा है, चपला है। न जाने विष्णुदेव ने उसे अपनी अर्द्धांगिनी कैसे बना लिया। कुलटा और चपला इन अपशब्दों से मेरा हृदय जला जा रहा है।

नारद—नारायण ! नारायण !! विष्णुदेव की अर्द्धांगिनी के प्रति ऐसे वचन !

शनि—मैं तो सत्यवक्ता हूँ। जो जैसा होगा, उसे वैसा कहूँगा। यदि मेरा कथन असत्य होता तो भले ही लक्ष्मी अपना अपमान समझती।

इंद्र—अंधे को अंधा पुकारना न्याय नहीं है।

नारद—देवराज ! ये वचन आपके मुख से शोभा नहीं देते। इस उपमा से तो आप भी यह स्वीकार करते प्रतीत होते हैं कि लक्ष्मी के जन्म के विषय में कुछ ऐसी-वैसी बात है।

इंद्र—महर्षि ! मेरा ऐसा विचार कभी नहीं हो सकता। अमृत-मंथन के समय लक्ष्मी देवी और अमृत आदि चौदह रत्न एक साथ ही निकले थे। जिस देवी के साथ अमृत जैसे पदार्थ की उत्पत्ति हो, उसके प्रति मैं ऐसे कुत्सित विचार नहीं रख सकता ! अमृत को तो सब देवता पान करते हैं......

शनि—देवेश ! पुष्प के साथ काँटे भी उत्पन्न होते हैं, क्या काँटे पुष्प के समान आदरणीय हैं ?

इंद्र—(कुछ चिढ़ कर) शनि ! तुम बहुत बढ़ते जा रहे हो। मैंने तो बात टालनी चाही थी, तुम टलने नहीं देते। सुनो, यदि अज्ञात माता-पिता की बात कहते हो तो कितने ही देवता तुम्हें ऐसे मिलेंगे जिनके माता-पिता का कुछ पता नहीं।

शनि—पुरुष-देवताओं की बात और है, स्त्री-देवताओं की बात और। कहा है, अज्ञात माता-पिता वाली कन्या से विवाह हेय है।

नारद—मैं इस विचार से सहमत नहीं। कन्या-रत्न कहीं से भी प्राप्त हो, वह ग्रहण करने योग्य है। कहा है:—

स्त्री रत्नं दुष्कुलादपि

और भी :—

स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या धर्मः शौचं सुभाषितम्।
विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः॥

शनि—मैं यही नहीं मानता।

इंद्र—इस प्रश्न से न तुम्हारा संबंध है न मेरा। इस विषय में विष्णुदेव प्रमाण हैं। तुम्हारे मानने न मानने से क्या होगा ?

शनि—मेरा संबंध तो इस बात से है कि अज्ञात कुलवाली लक्ष्मी मुझसे पदवी में बड़ी नहीं हो सकती। मैं उससे बड़ा हूँ।

लक्ष्मी—विश्व के पालन-पोषण-कर्त्ता की स्त्री के नाते मैं बड़ी हूँ। मेरी सब लोग पूजा करते हैं। मेरे लिए सब लोग लालायित

रहते हैं। मेरी कृपा से रंक भी राजा बन जाता है। मुझे प्राप्त करके लोग गद्‌गद्‌ हो उठते हैं, और तुम्हारी सूरत देखकर......

शनि—और क्या ? तुम गोरी और मैं काला ! तुम जानती हो कि तुम्हारे पति विष्णुदेव का कैसा रंग है, कैसी सूरत है। उन्हें भी यही वर्ण प्रिय है। जिस वर्ण की महिमा विष्णुदेव स्वीकार करते हैं, उसकी बुराई तुम भला क्या कर सकती हो ? तुम लोगों में पूजी जाने से अपनी बड़ाई समझती हो परंतु मैं तुम्हें बताये देता हूँ कि मेरी भी लोग बड़ी श्रद्धा से पूजा करते हैं।

लक्ष्मी—श्रद्धा से नहीं, भय से (प्रेम से किसी की पूजा-स्तुति करना उसकी महत्ता प्रकट करता है, भय से लघुता। संसार में पालन-पोषण-कर्त्ता बड़ा कहा गया है, विनाश-कर्त्ता नहीं।)

शनि—लक्ष्मी ! झगड़ती क्यों हो ? अभी निर्णय हुआ जाता है। देवराज ! आप हमारा निर्णय करें कि हम दोनों में कौन बड़ा है।

इंद्र—(सोचकर) आप दोनों से मैं परिचित हूँ। अतः मैं निर्णय करने में असमर्थ हूँ। पक्षपात हो जाने की संभावना है।

लक्ष्मी—यदि देवेंद्र हमारा निर्णय करने में असमर्थ हैं तो और कौन हमारा निर्णण कर सकता है। ओह ! यह अपमान मुझे जला रहा है।

इंद्र—(सोचकर) महर्षि नारद ने प्राग्देश के नरेश श्रीवत्स की न्यायशीलता की प्रशंसा की है, यदि आप वहाँ जाकर निर्णय करायें तो अच्छा है।

शनि—जो आज्ञा ।

नारद—देवराज ! देव-विवाद में किसी मनुष्य को मत घसीटो ।

इंद्र—आप कुछ शंका न करें ।

नारद—मेरा मन तो इससे सहमत नहीं होता । चलूँ, आप जो इच्छा हो करें ।

['हे नर, मन की आँखें खोल' गाते हुए प्रस्थान

इंद्र—मेरे विचार में तो यही अच्छा होगा कि आप कल वहाँ जाकर राजा श्रीवत्स से निर्णय करायें ।

लक्ष्मी-शनि—ऐसे ही सही ।

[दोनों का प्रस्थान

इंद्र—अब सोने की परख हो जायगी । पता चल जायगा कि शुद्ध सोना कितना है और मिलावट कितनी । श्रीवत्स ! अब परीक्षा के लिए तैयार हो जाओ ।

(पट-परिवर्तन)

दूसरा दृश्य

स्थान—प्राग्ज्योतिषपुर में राज-प्रासाद का उद्यान

समय—सूर्योदय के पूर्व

(मंद-मंद वायु चल रही है, पक्षी-गण अपना-अपना राग अलाप रहे हैं। भौंरे पुष्प-रस के लिए पुष्पों पर मँडरा रहे हैं। किसी के गाने का शब्द सुनाई देता है।)

आज न जाने क्यों मन रोता !

फूलों की मुसकान न भाती,

(दो युवतियों का धीरे-धीरे प्रवेश; दोनों गा रही हैं और साथ-साथ फूल चुन रही हैं।)

रवि की किरणें हृदय जलातीं,
कोयल कूक कसक उपजाती,
बहता आज व्यथा का सोता !
आज न जाने क्यों मन रोता !

ऊषा में संध्या-सी छाई,
दिया ज्योति में तिमिर दिखाई,
छिपी हँसी में आज रुलाई,
कौन बीज दुख के है बोता,
आज न जाने क्यों मन रोता ?

पहली—आज गाने में आनंद नहीं आ रहा। स्वर ठीक ही नहीं उठता। न मालूम क्यों !

दूसरी—कारण क्या होगा ? (कुछ सोचकर) आज हमारे साथ रानी नहीं हैं। कोयल के स्वर की समता गुलगुचियाँ कैसे करें ?

पहली—हाँ, सखी ! तुम ठीक कहती हो। परंतु (मुसकरा-कर)........परन्तु मैं महारानी से तुम्हारी बात कहूँगी। सखी सुशीला को आटे-दाल का भाव मालूम हो जायगा।

(दोनों फूल तोड़ना छोड़ देती हैं)

सुशीला—(दूसरी युवती की ओर देखकर) वाह ! मैंने क्या कहा है, सरला ! जो ऐसे कह रही हो ? मैंने तो रानी की बड़ाई ही की है।

सरला—(मुसकराकर) जी, हंस-सी सफ़ेद महारानी को कोयल जैसी काली-कलूटी तक कह डाला और फिर कहती हो बड़ाई की है। ठीक, बहुत ठीक।

सुशीला—चल, हट। ऐसी अनाप-शनाप बातें ठीक नहीं होतीं ! मैंने ....(सामने देखकर) देखो, महारानी अकेली ही इधर चली आ रही हैं।

(पूजा की सामग्री का थाल लिये महारानी चिंता का प्रवेश। सुशीला और सरला उधर बढ़ती हैं।)

सरला—(पास जाकर) वाह, महारानी ! आज पूजा की इतनी जल्दी, अकेली ही चल पड़ीं। क्या बात है ?

(सुशीला महारानी चिंता के हाथ से पूजा का थाल ले लेती है)

चिंता—कुछ ऐसी ही बात थी।

सुशीला—हमें साथ ले जाने की इच्छा नहीं। अच्छा, तो यही लेती जाओ। (चुने हुए फूल महारानी पर बरसा देती है)

चिंता—यह क्या ? आज मुझे कुछ नहीं भाता।

सुशीला और सरला—(चौंककर) क्यों, क्या हुआ ?

चिंता—आज मेरा मन व्याकुल हो रहा है। इसीलिए अकेली ही मंदिर को चल पड़ी थी।

सरला—मन की व्याकुलता कैसी ? आप और व्याकुलता !

सुशीला—एकांत में देवता से कोई वर माँगने की ठानी दीखती है।

सरला—तो इसमें क्या बात ? सब कोई देवताओं की कृपा चाहते हैं। महारानी अपनी गोद भरने......

चिंता—सखियो ! क्या कहूँ ? मैंने रात एक बुरा सपना देखा है, उससे मन व्याकुल है।

सरला और सुशीला—(चौंककर) बुरा सपना !

सुशीला—(उद्विग्नतापूर्वक) वह बुरा सपना क्या था ?

चिंता—(गंभीरतापूर्वक) स्वामी की ऐसी दुर्दशा होगी, कभी कल्पना नहीं हो सकती। (काँपती है) हे भगवान् ! कुशल करो, कल्याण करो।

सरला—शिव ! शिव !! बुरा हो ऐसे सपने का। वह सपना क्या था ?

सुशीला—रानी ! धीरज धरो। बताओ तो, वह क्या सपना था ?

चिंता—(गंभीरतापूर्वक) रात बीतने को थी, दिन निकलने वाला था। मैंने दुःस्वप्न में देखा कि नगर में आग लग रही है, महाराज नगर त्याग कर कहीं जा रहे हैं। (दोनों सखियाँ व्याकुलता

प्रकट करती हैं) मेरे सिवाय उनके साथ कोई नहीं है। भूख से व्याकुल होकर स्वामी लकड़हारे का काम करने लगते हैं। मुझे कोई हर ले जाता है।...

सरला—हाय ! एक साथ ही इतनी विपत्तियाँ !

सुशीला—ऊँह ! सब झूठ है। सपने की क्या शक्ति है कि हमारे न्याय-प्रिय महाराज का बाल भी बाँका कर सके। भगवान् उनका कल्याण करेंगे।

चिंता—बहुतेरा धीरज धरती हूँ परंतु हृदय विवश है, मानो इसे कोई मथ रहा है।

सरला—मैं अभी पुरोहित जी को इसका उपाय करने को कह आती हूँ। आप घबड़ायें नहीं।

चिंता—पुरोहित जी से तो मैंने उठते ही कहलवा दिया था।

सुशीला—तो उन्होंने क्या बताया ?

चिंता—उन्होंने कहा कि मैं इसका उपाय कर दूँगा, आप कुछ भय न करें।

सुशीला—आपने महाराज को सपना सुनाया होगा।

चिंता—हाँ, सपना देखते-देखते मैं चीख उठी। महाराज जाग गये, चीखने का कारण पूछने लगे। मैंने वह सब सपना कह सुनाया।

सरला—उन्होंने क्या कहा ?

चिंता—उन्होंने कहा, जो होता है भगवान् की इच्छा से

होता है। भगवान् सदा अपने भक्तों का कल्याण किया करते हैं। सो कुछ शंका मत करो।

सुशीला—हाँ, ठीक तो है। आप जैसी ज्ञानवती विदुषी को यह व्याकुलता नहीं सुहाती।

चिंता—परंतु स्वामि देव के अनिष्ट की आशंका से मन अधीर हो गया है। प्रभो ! प्रभो ! कृपा रखना।

सरला—इसी कारण मंदिर को अकेली चल पड़ी दीखती हो। आओ, चलें। देवाराधन से मन को शांति मिलती है।

सुशीला—(आगे बढ़कर) आइए, आइए।

(सरला और चिंता पीछे-पीछे चलती हैं।)

[सब का धीरे-धीरे प्रस्थान

(पट-परिवर्तन)

तीसरा दृश्य

स्थान—राज-सभा भवन

समय—दोपहर से पहले

(स्वर्णमय सिंहासन पर राजा श्रीवत्स विराजमान हैं, प्रधान मंत्री कुछ पत्रों पर हस्ताक्षर करा रहे हैं।)

प्रधान मंत्री—(एक पत्र हाथ में लेकर) यह पत्र एक ब्राह्मण का है।

श्रीवत्स—क्या चाहता है ?

प्रधान मंत्री—आर्थिक संकट में है, कन्या का विवाह है, कुछ सहायता चाहता है।

श्रीवत्स—अच्छा, दे दो एक सहस्र मुद्रा।

(प्रधान मंत्री पत्र महाराज के सामने रखता है, श्रीवत्स उस पर अपनी आज्ञा लिख देते हैं।)

प्रधान मंत्री—(एक और पत्र हाथ में लेकर) यह पत्र कुछ सामुद्रिक यात्रियों का है।

श्रीवत्स—क्या चाहते हैं ?

प्रधान मंत्री—व्यापार के लिए यहाँ आये थे, परंतु मार्ग में पोत के डूब जाने से उनका सब सामान जाता रहा। वे कुछ ऋण माँगते हैं और शीघ्र ही लौटाल देने का वचन देते हैं। वे बड़े संकट में हैं।

श्रीवत्स—अवश्य वे महान संकट में होंगे। अन्यथा कोई

धनी किसी से क्यों माँगेगा ? माँगने का दिन परमात्मा किसी को न दिखाए। अच्छा, वे कितना द्रव्य माँगते हैं ?

प्रधान मंत्री—दो सहस्र मुद्रा।

श्रीवत्स—दे दो।

(प्रधान मंत्री पत्र राजा श्रीवत्स के सामने रखता है, वे अपनी आज्ञा लिख देते हैं।)

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल—(नत-मस्तक होकर) महाराज ! पुरोहित जो पधारे हैं।

श्रीवत्स—आने दो।

द्वारपाल—जो आज्ञा। [प्रस्थान

प्रधान मंत्री—आज उनका इस समय कैसे आना हुआ ? दोपहर तक तो उनका पूजा-पाठ ही नहीं समाप्त होता।

(पुरोहित का प्रवेश)

श्रीवत्स—पुरोहित जी ! प्रणाम !

प्रधान मंत्री—(पुरोहित की ओर झुककर) प्रणाम !

पुरोहित—(दोनों को) चिरंजीव रहो, सानंद रहो। (श्रीवत्स को) महाराज ! मैंने महारानी के दुःस्वप्न का विचार किया है। मामला कुछ टेढ़ा ही जान पड़ता है। महारानी को मैंने कहलवा दिया है कि कुछ शंका मत करो परंतु......परंतु .....क्या कहूँ ?

प्रधान मंत्री—(चौंककर) कैसा दुःस्वप्न ? क्या बात है ? शीघ्र सुनाइये।

(आकाशवाणी होती है)

" सुनाना क्या, हम स्वयं ही आ रहे हैं।"

सब—(चौंककर) ये कौन हैं ?

(सब ऊपर देखते हैं)

पुरोहित—यह क्या ? आकाश में यह प्रचंड प्रकाश कैसा हो रहा है ?

(प्रकाश कुछ नीचे आता है और उसमें दो तेजस्वी मूर्तियाँ नीचे उतरती दिखाई देती हैं)

श्रीवत्स—(ऊपर देखकर) एक आकृति तो महर्षि नारद की होगी। वे प्रायः इस मर्त्य-लोक को पवित्र किया करते हैं। दूसरी आकृति किसकी है ? (फिर देखकर) यह तो कोई देवी जान पड़ती है।

(दोनों आकृतियाँ और नीचे उतर आती हैं)

पुरोहित—(ध्यान से ऊपर देखकर) एक तो लक्ष्मी देवी हैं और दूसरे, अरे ! यह तो शनि हैं।

प्रधान मंत्री—(चौंककर) शनि !

श्रीवत्स—(ऊपर देखकर, सहर्ष) माता लक्ष्मी ! और सूर्य देव के पुत्र शनि !! अहोभाग्य हैं कि आज इनके दर्शन हुए। (पुरोहित से) आप शनि देव के नाम से भयभीत क्यों हो गए ? (प्रधान मंत्री से) इन अतिथियों के सत्कार की शीघ्र आयोजना करो।

प्रधान मंत्री—बहुत अच्छा। [प्रस्थान

श्रीवत्स—(देखकर साश्चर्य) आकाश कैसा जगमगा रहा है !

लक्ष्मी देवी के शरीर से कैसा उज्ज्वल तेज फूट रहा है और शनि देव के शरीर से नीलम-सदृश प्रकाश कैसी विचित्र शोभा दे रहा है।

पुरोहित—(ऊपर देखते हुए) अथवा यह कहो कि नील वर्ण मेघों पर विद्युल्लेखा का आलोक हो रहा है।

श्रीवत्स—छाया और प्रकाश का कैसा अनूठा संमिश्रण है !

(दोनों ऊपर ध्यान से देखते हैं। अतिथि-सत्कार की सामग्री लिये प्रधान-मंत्री का प्रवेश।)

प्रधान मंत्री—(आकाश की ओर देखकर) अहा ! कैसा अद्भुत दृश्य है।

(लक्ष्मी देवी और शनिदेव भूमि पर उतरते हैं। श्रीवत्स उनका उचित आतिथ्य-सत्कार करते हैं। दोनों देवता आशीर्वाद देते हैं। श्रीवत्स सादर उन्हें सिंहासनों पर बैठाते हैं।)

श्रीवत्स—(हाथ जोड़े हुए) आप देवताओं ने आज इस मर्त्य-लोक को पवित्र कर दिया। मैं इस अनुग्रह के लिए आभारी हूँ। आप अवश्य हमारे पूर्व जन्म के संचित पुण्य कर्मों के प्रताप से इधर खिंच आये हैं। यदि मेरे योग्य सेवा हो तो आज्ञा कीजिए।

शनि—राजन् ! आपकी कीर्ति देव-लोक में भी फैल रही है। आपके न्याय का डंका दूर-दूर बज रहा है। हम भी किसी विशेष कारण से यहाँ आये हैं।

श्रीवत्स—(नम्रतापूर्वक) पूज्यदेव ! यह सब कुछ आप देवताओं की कृपा का फल है। तुच्छ मनुष्य तो देवताओं का कठपुतला है। आपकी अंतःप्रेरणा से सब काम होता है। मैं किस योग्य हूँ ? आप इस प्रकार प्रशंसा द्वारा मुझे लज्जित कर रहे हैं।

लक्ष्मी—पुत्र ! नम्रता सज्जनों का भूषण है। मैं तुम्हारे वचन सुनकर प्रसन्न हुई हूँ। मैंने जैसा तुम्हारा चरित्र सुना था, वैसा ही प्रत्यक्ष देख लिया।

श्रीवत्स—(लक्ष्मी की ओर देखकर) माताजी ! (शनि की ओर देखकर) पूज्यदेव ! मेरे लिए क्या आज्ञा है, कहिए।

शनि—राजन् ! हम दोनों में विवाद हो गया है कि हममें कौन बड़ा है। हम इसका निर्णय कराने के लिए तुम्हारे यहाँ आये हैं।

श्रीवत्स—(साश्चर्य) देवताओं का विवाद और मनुष्य निर्णय करे ! यह असंभव है। मैं निर्णय करने में असमर्थ हूँ। कोई और सेवा हो, वह आज्ञा कीजिए।

लक्ष्मी—वत्स ! तुम्हें हमारा मनोरथ-भंग करना उचित नहीं। हम इसी कारण तुम्हारे पास आये हैं। तुम निर्भय होकर बताओ कि हम दोनों में कौन बड़ा है, कौन शक्तिशाली है। इसके अतिरिक्त हमारी कोई इच्छा नहीं। तुम न्याय-प्रिय हो, हमारा निर्णय करो।

श्रीवत्स—माता ! मुझे आश्चर्य है कि आपने देव-लोक में किसी देवता द्वारा निर्णय क्यों नहीं करवाया ?

लक्ष्मी—पुत्र ! इसका एक कारण है। वहाँ देव-लोक में नित्य रहने के कारण हमें पक्षपात हो जाने का भय है।

शनि—राजन् ! तुम हमारा निर्णय कर सकोगे या नहीं, यह बात हमारे लिए विचारणीय है, तुम्हारे लिए नहीं। हमें तो विश्वास है कि तुम हमारा निर्णय कर सकोगे।

श्रीवत्स—देव ! यह पहेली मेरी बुद्धि से बाहर है। क्षुद्र ज्ञान-वाला मनुष्य देवता का देवत्व कैसे जानेगा, और बिना यह निश्चय किये इस विवाद का निर्णय कैसे कर सकेगा ?

शनि—श्रीवत्स ! सोच-विचार में न पड़ो। तत्त्वज्ञानवती श्री तुम्हारे हृदय-मंदिर की अधिष्ठात्री देवी है। तुम उसके पति हो। उसके संबंध से तुम देवता से न्यून नहीं रहे। सती साध्वी शक्ति-शालिनी स्त्री के प्रभाव से तुम देव-सदृश हो गये हो।

(श्रीवत्स सोचने लगते हैं)

लक्ष्मी—राजन् ! चुप क्यों हो गये ? उत्तर दो।

श्रीवत्स—(दीन भाव से) माता ! मैं उत्तर क्या दूँ ? मेरी बुद्धि काम नहीं करती। मुझे शोक है कि आपने कष्ट उठाया किन्तु मैं आपकी सेवा करने में असमर्थ हूँ, (कुछ उद्विग्न होकर) विवश हूँ।

लक्ष्मी—प्राणराज ! हमारा निर्णय तुम्हें करना होगा। इससे तुम्हें छुटकारा नहीं मिल सकता।

शनि—हाँ, लक्ष्मी ने ठीक कहा है। श्रीवत्स ! सुनो, न्याय-प्रिय व्यक्ति को निर्णय करने में संकोच करना अच्छा नहीं। जब न्याय का तराजू हाथ में ले लिया तो झिझक कैसी ? साँच

को आँच नहीं, फिर भय क्यों ? तुम निर्भीक व्यक्ति हो, अब भीरु क्यों बनते हो ?

श्रीवत्स—(विवशतापूर्वक) अच्छा, जो आज्ञा, किंतु यह प्रश्न कठिन है। सोचने के लिए कुछ समय दीजिए। आज आप इस कुटिया को पवित्र कीजिए। कल आपके प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न करूँगा।

शनि—अच्छा, कल ही सही, किंतु हम यहाँ ठहर नहीं सकते।

श्रीवत्स—हे छाया-नंदन ! हे सागर-सुते ! यह मैं जानता हूँ कि यह पृथ्वी देवताओं के लिए उचित वासस्थान नहीं, किंतु अपने भक्तों के लिए देवताओं को सब कुछ करना पड़ता है। भक्तों से देवताओं की मर्यादा बढ़ती है।

शनि—श्रीवत्स ! हम तुम्हारी इस नम्रता और सज्जनता पर मुग्ध हैं, किंतु निर्णय करनेवाले का आतिथ्य स्वीकार करना अनुचित है। इससे पक्षपात हो जाने की संभावना है।

लक्ष्मी—राजन् ! हमारे लौट जाने का बुरा मत मानना। हमें तुमसे अनुराग है, इसीलिए और किसी राजा के यहाँ न जाकर तुम्हारे पास आये हैं। भक्त-जन देवताओं के प्रेम-पात्र होते हैं। हम कल इसी समय फिर आ जायँगे। तुम भली प्रकार विचार कर लो और सच्चे निर्णय का आश्रय लेकर कार्य करो। किसी की अप्रसन्नता का भय न करो।

श्रीवत्स—जो आज्ञा।

शनि—तो हम चलते हैं।

(श्रीवत्स आदि सिर झुकाते हैं, शनि और लक्ष्मी आशीर्वाद देते हुए अंतर्द्धान हो जाते हैं।)

पुरोहित—मेरी आशंका सत्य होती जान पड़ती है।

श्रीवत्स—समस्या अत्यंत कठिन है। इधर कुआँ, उधर खाई। मेरा मस्तिष्क काम नहीं देता, कदाचित् महारानी कोई मार्ग निकाल सकें। वहीं जाता हूँ। तो फिर आज की सभा समाप्त।

[विचार-ग्रस्त श्रीवत्स का एक ओर प्रस्थान। पुरोहित तथा प्रधान-मंत्री का चुपचाप दूसरी ओर प्रस्थान]

(पट परिवर्तन)

चौथा दृश्य

स्थान—श्रीवत्स का अंतःपुर

समय—दोपहर

(चिंता संगमरमर की चौकी पर उदास बैठी है। सामने एक चित्र लटक रहा है। उधर ध्यान से देखते हुए)

चिंता—न जाने परमात्मा ने हमारे भाग्य में क्या लिखा है, उसे हमें क्या-क्या कौतुक दिखाने हैं! उसकी लीला अपरंपार है, उसका कोई पार नहीं पा सकता। पल भर में वह पुरुष को पर्वत-शिखर पर चढ़ा दे और पल भर में पाताल पहुँचा दे। मनुष्य के किये क्या होता है? (कुछ सोचकर) धीरज रखती हूँ परंतु कोई अंतःशक्ति हृदय को व्याकुल कर देती है। अच्छा, जो प्रभु की इच्छा! प्रभु की ही कृपा चाहिए।

(सुशीला का शीघ्रता से प्रवेश। रानी के अंतिम शब्द सुनकर)

सुशीला—हाँ, प्रभु की ही कृपा चाहिए। उसकी इच्छा बिना कुछ नहीं होता। उसकी इच्छा हुई तो आज आनंद का दिन दिखा दिया।

चिंता—कैसा आनंद का दिन! क्या कह रही हो?

सुशीला—आज लक्ष्मी देवी और शनि देव यहाँ पधारे हैं। हमारे देश पर उनकी कृपा-दृष्टि है।

चिंता—(गंभीरतापूर्वक) तुम इसी घटना से फूल रही हो, परंतु मुझे कोई हर्ष नहीं। देवता लोग निष्कारण पृथ्वी पर नहीं

आते। तभी आज प्रभात से मेरे सामने कोई अज्ञात आशंका नाच रही है। इसके साथ यदि आज के दुःस्वप्न का संबंध है तो मैं कह नहीं सकती कि हमारे भाग्य में क्या लिखा है।

सुशीला—सखी !......

(सरला का शीघ्रता से प्रवेश)

सरला—रानी ! कुछ सुना आपने ?

चिंता और सुशीला—क्या ?

सरला—लक्ष्मी देवी और शनि देव ने यहाँ पधार कर हमारे महाराज को एक भारी परीक्षा में डाल दिया है।

चिंता—परीक्षा ? कैसी परीक्षा ?

सरला—दोनों देवताओं में विवाद हो रहा है कि उन दोनों में कौन बड़ा है। महाराज से इसका निर्णय कराने के लिए वे यहाँ आये हैं। जिसे छोटा कहा, वही रुष्ट होकर दुःख देगा। बड़ी विकट परीक्षा है।

चिंता—उनका यहाँ आना सुनकर ही मेरा माथा ठनका था। देवताओं का मनुष्य लोक में आना कुशल प्रकट नहीं करता।

सरला—वाह ! देवताओं को तो कल्याणकारी कहा जाता है। तुम उलटी गंगा क्यों बहाती हो ?

सुशीला—नारी ! मैं इनकी बात जान गई। यह समझती हैं कि देवतागण यहाँ मनुष्यों की परीक्षा के लिये आते हैं, उनकी जाँच करते हैं। .....

चिंता—हाँ, दुःख-सागर में फेंककर मानव-धैर्य की थाह लेते हैं, गुणोत्कर्ष की परख करते हैं। और...

सरला—मैं तो इस विचार से सहमत नहीं। यदि तुम्हारा कहना सच्चा हो तो देव-दर्शन क्या हुआ, दैत्य-दर्शन हुआ। देव और दैत्य में अंतर क्या रहा ?

सुशीला—(रानी को चिंतित देखकर) हाँ, सरला ठीक कहती है।

चिंता—विधि बलवान् है। देखें, क्या घटना घटती है। अभी तो इस समस्या को सुलझाना है।

सरला—यह तो आपके लिए कोई कठिन काम नहीं।

सुशीला—इसमें क्या संदेह ?

(बाहर किसी के आने की आहट सुनाई देती है)

सरला—(आहट सुनकर और उधर देखकर) महाराज आ रहे हैं।

(चिंता-ग्रस्त श्रीवत्स का प्रवेश)

[सरला तथा सुशीला का दूसरी ओर से प्रस्थान

चिंता—(महाराज को विचार-लीन देखकर) देव ! आज यह चिंता की झलक कैसी ? भला लक्ष्मी देवी और शनि देव की समस्या का इतना सोच-विचार ?

श्रीवत्स—समस्या बड़ी जटिल है। जिसको छोटा कहूँगा, वही मुझ पर क्रोध दिखाएगा। इधर कुआँ है, उधर खाई।

चिंता—स्वामी ! आप तनिक धीरज से काम लें कोई उपाय सूझ जायगा।

श्रीवत्स—विचार किया है, अभी कुछ सूझा नहीं। तुम ही कुछ सहायता करो।

चिंता—मैं सहायता करूँ ? मेरी स्त्री-बुद्धि क्या करेगी ?

श्रीवत्स—स्त्री-बुद्धि की बात छोड़ो। मैं जानता हूँ तुम्हारे मस्तिष्क की शक्ति। कोई उपाय सोचो।

चिंता—उपाय तो मैंने सोचा है।

श्रीवत्स—वह क्या ?

(भागते हुए दासी का प्रवेश)

दासी—महाराज ! बचाइए, बचाइए।

चिंता और श्रीवत्स—(दोनों घबड़ाकर) क्या हुआ ?

दासी—हाय ! सुशीला पड़ी तड़प रही है।

चिंता—किसलिए ?

दासी—उसे कीड़े ने छू लिया ?

चिंता—(विनयपूर्वक) महाराज ! आप इसका प्रतिकार जानते हैं ; आप मेरी सखि की रक्षा करें।

श्रीवत्स—देवी ! उद्विग्न मत हो। अभी उसे ठीक किये देता हूँ।

[श्रीवत्स और उनके पीछे-पीछे उद्विग्न चिंता तथा दासी का प्रस्थान]

(पट-परिवर्तन)

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—श्रीवत्स की राजसभा

समय—मध्याह्न के पूर्व

(श्रीवत्स और चिंता राजसिंहासन पर विराजमान हैं। उनके सामने दाईं ओर सोने का सिंहासन है, बाईं ओर चाँदी का। सिंहासनों के ऊपर पुष्प-मालाओं का ताना-बाना बनाया गया है। सुगंध-पात्रों से धुआँ उठकर वायु को सुवासित कर रहा है। प्रधान मंत्री पुरोहित आदि सब यथास्थान बैठे हैं।)

पुरोहित—दीनबंधो ! उपाय तो अच्छा है। अब भगवान् करें, सब मंगल हो।

प्रधान मंत्री—मुझे भय है कि जो श्रेष्ठ पद नहीं पायेगा, वही क्रोध दिखायेगा।

श्रीवत्स—अब इसकी चिंता क्या ! न्याय-पथ से विचलित न होऊँगा, कष्ट चाहे अनेक हों।

पुरोहित—निश्चय, महाराज ! आपकी कीर्ति-पताका त्रिलोक में फहरायेगी।

(आकाशवाणी होती है)

" ठीक है, हम इसीलिए यहाँ आये "

(सब साश्चर्य ऊपर देखते हैं। लक्ष्मी देवी और शनि देव पृथ्वी पर उतरते दिखाई देते हैं। सब उनके स्वागत के लिए खड़े हो जाते हैं।)

श्रीवत्स—(ऊपर देखकर) मंत्रीजन ! पूज्य देवता आ गये। पूजा की सामग्री लेकर प्रस्तुत हो जाओ।

(लक्ष्मी देवी और शनि देव नीचे सभा में उतरते हैं, श्रीवत्स उनका यथोचित आदर करते हैं। देवता उन्हें आशीर्वाद देते हैं।)

श्रीवत्स—पूज्य देवताओ ! अपना अपना सिंहासन ग्रहण कीजिए।

शनि अपनी इच्छा से बाईं ओर चाँदी के सिंहासन पर बैठ जाते हैं और लक्ष्मी दाईं ओर सोने के सिंहासन पर)

चिंता—(हाथ जोड़कर) मातेश्वरी लक्ष्मी ! आज आपके दर्शनों से मैं कृतार्थ हुई। शनि देव ! आपने यहाँ पधारकर हम पर अनुग्रह किया है। कल मैं आपके दर्शनों से वंचित रही थी, आज मैं अपने आपको धन्य समझती हूँ।

श्रीवत्स—पूज्य देवताओ ! आपके पुण्य-दर्शन से मैं अनुगृहीत हूँ। अनेक वर्षों की तपस्या से जो फल मिलता है, वह हमें विना प्रयत्न किये प्राप्त हो गया।

शनि—राजन् ! शिष्टाचार हो चुका। अब हमें यह बताओ कि हमारे विवाद का क्या निर्णय किया ?

श्रीवत्स—देववर ! मैं क्षुद्र मनुष्य हूँ। मेरी बुद्धि तुच्छ है। मैं इसमें निर्णय क्या करूँ ?

शनि—(कुछ क्रोध के साथ) राजन ! यदि निर्णय नहीं करना था तो हमें कल ही क्यों न कह दिया ? कल हमें 'हाँ' कहकर अब हमारा उपहास करते हो ?

श्रीवत्स—(नम्रतापूर्वक) रवि-नंदन ! मैं आपका उपहास कदापि नहीं कर सकता। आप दोनों ही अपना निर्णय कर लें।

लक्ष्मी—(कुछ चिढ़कर) फिर वही बात ! यदि हम दोनों ही अपना निर्णय आप कर लेते तो यहाँ क्यों आते ?

श्रीवत्स—पूज्य देवताओ ! आप मुझसे निर्णय क्या करवाना चाहते हैं ? आपने अपना निर्णय स्वयं कर लिया है।

शनि और लक्ष्मी—(सविस्मय) निर्णय स्वयं कर लिया है ! यह कैसे ?

श्रीवत्स—आप अपना-अपना सिंहासन देखें।

(लक्ष्मी और शनि अपना-अपना सिंहासन देखते हैं, किन्तु कुछ समझ नहीं पाते।)

शनि—नर-पुंगव ! हम तुम्हारे अतिथि हैं। तुम ने हमें जहाँ बैठने को स्थान दिया, वहाँ हम बैठ गये। इससे हमारे विवाद का निर्णय क्यों कर हो सकता है। जो कहना है वह स्पष्ट कहो।

श्रीवत्स—देववर ! यह आपको विदित है कि जो श्रेष्ठ होता है उसका आसन मूल्यवान् और दाईं ओर होता है। आपने स्वयं बाईं ओर चाँदी के सिंहासन पर बैठ कर लक्ष्मी देवी को अपने दाईं ओर सोने के सिंहासन पर स्थान दिया है। अब इस निर्णय में मैं क्या कहूँ ?

(लक्ष्मी के मुख पर हर्ष-रेखा दिखाई देती है)

शनि—(उत्तेजित होकर) श्रीवत्स ! तुम बड़े चपल हो।

तुम्हारा वास्तव में प्रयोजन है मेरा अपमान करना। अच्छा, देख लूँगा। तुम.........

श्रीवत्स—देव! इस निर्णय में मेरा कुछ हाथ नहीं। मेरे कहने से आप इस सिंहासन पर नहीं बैठे। आप दूसरे सिंहासन पर बैठ सकते थे, परंतु जगत् का धर्म है कि अपने से ऊँचे के आगे सिर झुकाया जाय। आपने इसी धर्म का पालन किया है और अपनी इच्छा से किया है।...

शनि—(क्रोध से आँखें लाल किये हुए) श्रीवत्स! मैं नहीं जानता था कि तुम इतने वाक्पटु हो। तुम देव-पुत्र का तिरस्कार करते हो, अज्ञात माता-पिता की संतान का आदर! यही तुम्हारा न्याय है?

चिंता—देव! आप क्रोध न करें। विष्णु देव इस विश्व के पालन-पोषण-कर्त्ता हैं, इस विश्व के आधार हैं। देवी लक्ष्मी उनकी अर्द्धांगिनी हैं। आपके श्रीमुख से उनके प्रति ऐसे कटु वचन शोभा नहीं देते।

शनि—चिंता! तुम्हारा यह साहस!...

चिंता—शनिदेव! साहस नहीं, स्त्री का अपमान...

लक्ष्मी—पुत्री! तुम शांत रहो। शनि के वचनों का कुछ ध्यान मत करो।

शनि—(सक्रोध) लक्ष्मी, तुम्हारा इतना गर्व! मेरे वचनों पर भी लोग कान में तेल डाले बैठे रहें? तुम्हें उन्होंने श्रेष्ठ जो ठहरा दिया, तो उनका पक्ष क्यों न लोगी? मैं भी देख लूँगा कि

उनकी सुख-निद्रा कैसे भंग नहीं होती है, शांति का राज्य कैसे अशांत नहीं होता है, और धन-धान्य से पूर्ण देश में कैसे अनावृष्टि और अकाल नहीं पड़ता है। तब श्रीवत्स को ज्ञात हो जायगा कि शनि के अपमान का मूल्य कितना महँगा है। मैं भयंकर विध्वंस, महाप्रलय, महाज्वाला और दुर्भिक्ष तथा महामारी बनकर श्रीवत्स द्वारा अपने अपमान का बदला लूँगा।

[क्रोध से लाल आँखें किये सगर्व शनि का प्रस्थान

(श्रीवत्स, चिंता आदि उद्विग्न हो जाते हैं)

लक्ष्मी—(आश्वासन देती हुई) श्रीवत्स ! चिंता ! तुम कुछ भय मत करो। मैं सदा तुम्हारा साथ दूँगी। तुम सुख में, दुःख में, अपना कर्त्तव्य मत छोड़ना। कर्त्तव्य-परायण रहने पर तुम्हारा कुछ भी अनिष्ट न हो सकेगा। जहाँ शनि तुम्हें दुःख देने की योजना करेगा, मैं सुख दूँगी। तुम दोनों ने मुझे प्रीति-बंधन में बाँध लिया है। वह बंधन अटूट रहेगा। तुम्हारा अंत में कल्याण होगा।

चिंता—मातेश्वरी ! यह पृथ्वी दुःख-संकटों से परिपूर्ण है। देवताओं का आशीर्वाद ही परम सहायक है। आपसे अब यही प्रार्थना है कि संसार-सागर में दुर्दिन के समय आप हमारी नौका पार लगाएँ।

लक्ष्मी—पुत्री ! कुछ चिंता मत करो। तुम्हारा कल्याण होगा।

श्रीवत्स—देवी ! आपका आशीर्वाद हमें धैर्य और शक्ति देगा।

लक्ष्मी—श्रीवत्स ! चिंता ! यह संसार कर्म-भूमि है। कर्म ही संसार-सागर को पार कर जाने की एक-मात्र नौका है। अतएव सत्कर्म तुम्हारे जीवन का आदर्श रहे, ऐसी मेरी इच्छा है। अब मैं चलती हूँ।

(श्रीवत्स और चिंता दोनों नत-मस्तक होते हैं, लक्ष्मी धीरे-धीरे अंतर्द्धान हो जाती हैं। कुछ देर तक निस्तब्धता छाई रहती है।)

श्रीवत्स—(विचारपूर्वक) प्रधान मंत्री ! देखो देवताओं की लीला ! अपने आप निर्णय करने पर भी मुझ पर इतना क्रोध ! मैंने तो पहले ही जान लिया था कि इस विवाद का निर्णय करना विपत्ति को बुलाना है।

पुरोहित—महाराज ! भाग्य-रेखा अमिट है। आपको शनि द्वारा दुःख भोगना होगा। व्याकुल मत होइए, धीरज रखिए। माता लक्ष्मी आपकी सहायता करेंगी।

चिंता—प्रभु से मेरा अब यही अनुरोध है कि हम अपने कर्त्तव्य-पथ पर सधैर्य चलते चलें ; दुःख, क्लेश, बाधा आदि हम पर कुछ प्रभाव न दिखा सकें।

प्रधान मंत्री—परमात्मा से मेरी यही प्रार्थना है कि आप इस परीक्षा में सफल हों।

श्रीवत्स—तुम देखोगे कि श्रीवत्स देव-परीक्षा में व्याकुल नहीं

होगा। धीर पुरुष वही है जो आपत्तियों के टूट पड़ने पर भी विचलित न हो।

(श्रीवत्स आसन से उतरते हैं और हाथ जोड़कर आकाश की ओर देखते हैं। सभी सभासद खड़े हो जाते हैं।)

श्रीवत्स—हे भगवान्, मुझे शक्ति दो कि विपत्तियों की बाढ़ में भी मैं सत्पथ न छोड़ूँ। संकटों के समुद्र को हँसते-हँसते पार करूँ!

[पटाक्षेप]

दूसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—प्राग्ज्योतिषपुर

समय—दोपहर के बाद

(राजमार्ग पर कुछ नागरिक बातचीत कर रहे हैं।)

एक—ऐसा सूखा पहले कभी न पड़ा था, कहीं भी हरियाली दिखाई नहीं देती। हरी-भरी खेतियाँ सब सूख गईं, खाने को कुछ न बचा, अब क्या करेंगे ?-शिव ! शिव !!

दूसरा—भगवान् ही कुशल करें। मेरी इतनी अवस्था हो गई, किंतु ऐसी दुर्दशा कभी न देखी थी। इतना भयंकर अकाल ! हरे ! हरे !!

तीसरा—फूल में काँटा है, चंद्रमा में कालिमा है ..

चौथा—तुम रहे मूर्ख के मूर्ख ही। भाई ! प्रसंग तो है भूखे मरने का और तुम काव्य की उपमाओं का बखान करने लगे।

तीसरा—मैं मूर्ख हूँ तो तुम हो मूर्खराज ! बिना सुने, बिना सोचे-विचारे जो बोलता है, वह मूर्खराज कहलाता है। (सोचते हुए) कहा भी है ,

अनाहूतो विशेद् यस्तु अनाहूतश्च यो वदेत्।
अविचारेण यः कुर्यान्मूर्खाणां प्रथमो हि सः ॥

पहला—अरे ! अब श्लोक बोलने लगा। अपनी बात क्यों नहीं पूरी करता ?

तीसरा—बिगड़ते क्यों हो ? सुनो, फूल में काँटा है, चंद्रमा में कालिमा है, गुण में अवगुण है, स्पष्ट-वादिता में अप्रियता है, न्याय में संकट है......

दूसरा—भाई ! न्याय किया किसी ने, श्रेष्ठ सिद्ध कोई हुआ, कुपित कोई, सिंह के मुँह में हम क्यों दिये गये ?

तीसरा—क्योंकि श्रीवत्स हमारे महाराज हैं, हम उनकी प्रजा। हम प्राग्देश के निवासी हैं, वे प्राग्देश के नरेश। हम उनकी संतान हैं, वे हमारे पिता।

पहला—तुम तो तिल का पहाड़ बनाकर कहते हो।

दूसरा—तो यह कहो कि जैसे किसी कुकर्म से सारा परिवार लांछित हो जाता है, वैसे ही राजा के कारण प्रजा।

पहला—कुकर्म क्यों कहते हो ?...

(एक ओर से कुछ कोलाहल सुनाई देता है, सब उस ओर ध्यान से देखते हैं। ढोल बजाते हुए एक राजपुरुष का प्रवेश।)

राजपुरुष—(ढोल बजाते हुए एक स्थान पर खड़ा होता है और ढोल बजाना बंद करके) हे प्राग्देश के निवासियो ! सर्वश्री-संपन्न सकल-गुणवारिधि महाराज श्रीवत्स देश में अनावृष्टि के कारण अन्न का अभाव अनुभव कर, प्रजा-प्रेम और दीन-वत्सलता से प्रभावित होकर, तथा आपत्काल में प्रजा की सहायता करना अपना आवश्यक कर्त्तव्य समझकर, घोषणा करते हैं कि आज से

प्रार्थियों को राज-भंडार से अन्न बिना मूल्य मिला करेगा। जो अन्न लेना चाहे वह दोपहर से लेकर सायंकाल तक वहाँ से ले सकता है। [ढोल बजाते हुए एक ओर प्रस्थान

पहला—धन्य हो महाराज! आप हमारे लिए कल्पद्रुम हैं।

दूसरा—अब दुर्भिक्ष पड़ा है तो सहज में छुटकारा न मिलेगा। चोर और डाकुओं के दल बन जायँगे और वे मनमाना अत्याचार करेंगे।

तीसरा—भाई! (महाराज दूरदर्शी हैं, न्याय-प्रिय हैं, सब प्रबंध कर देंगे। चिंता मत करो।)

चौथा—हाँ, चिंता कैसी? चिंता तो उन्होंने सब इकट्ठी कर, उसे रूप देकर, अपने पास रख ली है। श्रीवत्स महाराज के राज्य में दुःख, अत्याचार होना असंभव है।

पहला—अरे, भविष्य किसने देखा है? अभी तक प्राग्देश-निवासी दुःखों से बचे थे, अब शनि जो करे सो कम है।

दूसरा—यही तो मैं कहता हूँ। (आकाश की ओर देख कर) अरे! आँधी आ रही है।

चौथा—हाँ, उस ओर आकाश धूल से भर गया। इधर भी साँय-साँय का शब्द आने लगा है।

तीसरा—अरे! अब यहाँ से नौ-दो ग्यारह हो जाओ!

[सब का सवेग प्रस्थान

(पट-परिवर्तन)

दूसरा दृश्य

स्थान—महाराज श्रीवत्स का राज-भंडार

समय—रात

(राज-भंडार में आग लग गई है; लोग दुखी हुए खड़े-खड़े बातचीत कर रहे हैं।)

पहला—यह सब शनि देव की कृपा है।

दूसरा—शनि देव मत कहो, शनि पिशाच कहो।

तीसरा—अरे, देव हो या पिशाच, ऐसे निठुर का नाम लेना भी पाप है।

चौथा—अरे, ऐसा मत कहो। शनि सूर्य भगवान् का पुत्र है।

पाँचवाँ—परंतु वह सूर्य भगवान् जैसा उपकारी नहीं.........

तीसरा—अपकारी तो है।

(एक ओर सहसा छत गिर पड़ती है।)

पहला—अरे, सब लोग पीछे हट जाओ।

पहला—इस अग्निकांड से शनि देव का क्रोध शांत हो जाय तो बहुत है।

तीसरा—शनिदेव का क्रोध ऐसे शांत नहीं होगा। वे देर तक मन में विष घोला करते हैं।

पहला—सब जलकर राख हो गया। अब नगर में कुछ खाने को नहीं रहा। देवताओं की लगाई आग शीघ्र शांत नहीं हो सकती।

दूसरा—हमारे भाग्य में भूखे मरना ही लिखा होगा।

तीसरा—चलो, ऐसे ही सही! इकट्ठे मरने पर सब सूर्य देव के पुत्र पर नृशंसता का अभियोग लगायेंगे।

चौथा—अभियोग सब निकल जायगा जब बच्चे भूख से तड़प-तड़पकर प्राण देंगे।

तीसरा—इससे तो हमारे क्रोध की मात्रा शनि के विरुद्ध और भड़क उठेगी।

(महाराज श्रीवत्स तथा प्रधानमंत्री का प्रवेश)

श्रीवत्स—(राज-भंडार की ओर देखकर) सब नष्ट हो गया! शनि देव! आप यही अपनी शांति के लिए आहुति समझें। मेरी प्रजा को कोपाग्नि की आहुति न बनाएँ। निर्णय के कारण आपका क्रोध मेरे ऊपर है, उसका पात्र मैं हूँ, मुझ पर आपकी जो इच्छा हो, प्रहार कीजिये।

प्रधान मंत्री—नाश करने वाले की अपेक्षा पालन-पोषण करने वाला बड़ा होता है। यह भी एक कारण है कि लक्ष्मी क्यों बड़ी हैं। शनि देव! आप यदि लक्ष्मी से बढ़कर अपना प्रताप दिखाना चाहते थे तो देश में धन-धान्य की और अधिकता कर देते। उससे सब कहते कि लक्ष्मी के किये जो नहीं हुआ वह शनि देव द्वारा हो गया। अस्तु, आपकी इच्छा।

पहला—महाराज! यह आग शनिदेव के हृदय की अंतर्ज्वाला से संबंध रखती है। न जाने अभी क्या-क्या घटना है!

श्रीवत्स—मेरे प्रिय कर्मचारियो और प्रजा-जनो! कुछ चिंता

मत करो। मैं और-और स्थानों से खाद्य-सामग्री शीघ्र मँगवाता हूँ। जो होना था सो हो गया। जाओ, विश्राम करो।

[सब का प्रस्थान

(एक ओर से शनि का प्रवेश)

शनि—विश्राम ! विश्राम अब मैंने सपना कर दिया। जहाँ पहले सुख और चैन की वंशी बजती थी, वहाँ अब दुःख-भरी आहें सुनाई पड़ा करेंगी। मैं तब तक श्रीवत्स और उसकी प्रजा को कष्ट दिये जाऊँगा जब तक श्रीवत्स यह न कहने लगे कि "शनि ! क्षमा करो। भूल हुई। तुम ही वास्तव में बड़े हो।" मुझे छोटा कहने से सब देवताओं की मर्यादा पर बट्टा लगा। तेजस्वी सूर्य का पुत्र भला लक्ष्मी से छोटा कैसे हो सकता है ? स्त्री तो वैसे भी अबला कही जाती है, फिर भी श्रीवत्स ने लक्ष्मी को ही बड़ा ठहराया ! यह न्याय नहीं, अन्याय है। देखता हूँ लक्ष्मी मेरा सामना कैसे और कितना कर सकती है।

[प्रस्थान

(पट परिवर्तन)

तीसरा दृश्य

स्थान—महाराज श्रीवत्स का शयन-गृह

(महाराज श्रीवत्स और चिंता विचारलीन दिखाई देते हैं। महाराज शय्या पर बैठे हैं। पास में चिंता खड़ी है।)

श्रीवत्स—हाय! दुर्भिक्ष, अग्निकांड आदि सब घोर यातनाएँ प्रजा को मेरे कारण ही सहन करनी पड़ रही हैं। शनिदेव की क्रूर दृष्टि मुझ पर है। मेरे कारण ही मेरी प्रजा पीड़ित हुई है। यदि मैं यहाँ से राज-पाट त्याग कर चल दूँ, तो मेरी प्रजा के लिए फिर सुख और शांति की वर्षा होने लगेगी।

चिंता—स्वामी! शनि देव तो हमारा पीछा छोड़ने के नहीं। उनके कोप-पात्र हम हैं, न कि हमारी प्रजा। आप ठीक कहते हैं कि हम राज-पाट छोड़कर कहीं चले जायँ। किंतु कहाँ चला जाय?

श्रीवत्स—मेरा विचार है कि तुम अपने नैहर चली जाओ। मैं शनि की दृष्टि की अवधि व्यतीत कर, भाग्य पलटने पर, अपने देश को लौट आऊँगा। इस समय मेरे साथ चलकर तुम्हें पग-पग पर विपद् में पड़ना होगा। भाग्योदय होने पर तुम यहाँ आ जाना।

चिंता—(सविनय) स्वामिदेव। मैंने कौन-सा अपराध किया है जो आप मुझे अपने से पृथक् करके दंड दे रहे हैं?

श्रीवत्स—तुमसे अपराध क्या हो सकता है ? केवल तुम्हारे सुख के लिए ऐसा कहता हूँ। मेरे साथ तुम्हें दुःख सहने पड़ेंगे।

चिंता—(विनयपूर्वक) पूज्यदेव (स्त्री पति के कर्मों की सह-योगिनी और सहभोगिनी है। अतएव मैं आपके साथ ही रहूँगी। मैं कोयल नहीं, जो बौर आने पर आम के पेड़ पर कूजने लगती है और बौर न रहने पर उड़ जाती है। मैं चंद्रमा की चाँदनी हूँ, जो चंद्रमा के राहु-ग्रस्त होने पर साथ में ग्रसी जाती है। मैं सूर्य की धूप हूँ, जो सूर्य के मेघाच्छादित होने पर साथ ही छिप जाती है।)

श्रीवत्स—मेरा जाना कहीं निश्चित नहीं। मैं नहीं चाहता कि किसी जन-संकीर्ण प्रदेश में जाकर रहूँ। मेरे वहाँ रहने पर वहाँ के निवासियों पर ऐसा ही दुःख-क्लेश बरस पड़ेगा। न जाने मुझे कहाँ-कहाँ भटकना पड़े। तुम्हें साथ कैसे ले जाऊँ ?

चिंता—देव ! मैं समझती थी कि आप मुझसे असीम प्रेम करते हैं, दुःख, भय और संकट आपके प्रेम को सीमित नहीं कर सकते। परंतु एक ही बार दुःख आ पड़ने पर आप मुझसे पृथक् होना चाहते हैं। आप अज्ञात भय की आशंका से डरकर मुझे छोड़ जाना चाहते हैं।

श्रीवत्स—मैं तुम्हें पृथक् करना नहीं चाहता, परंतु विवश हूँ। संकट का समय व्यतीत होने पर फिर हमारा संमिलन होगा। धीरज रखो।

चिंता—मेरे लिए ऐसे धीरज रखना असंभव है (सूर्य से धूप, चंद्रमा से ज्योत्स्ना, और पति से पत्नी पृथक् नहीं हो सकती।

पति से वियुक्त स्त्री जीवित नहीं रह सकती। स्त्री को पति के साथ रहते हुए दुःख सुख है और पति से पृथक् रहते हुए सुख दुःख है। जल से बाहर निकाली हुई, स्वर्णमय रत्नजटित सिंहासन पर खाद्य-सामग्री आदि से रक्षित मछली की जो दशा होती है, वही आपसे बिछुड़ कर मेरी दशा होगी। यदि आप मुझे जीवित रखना चाहते हैं तो अपने श्रीचरणों में स्थान दीजिए! आप जब परिश्रम से थक जायँगे, मैं आपकी सेवा किया करूँगी।

(आँखें सजल हो जाती हैं और गला भारी हो जाता है।)

श्रीवत्स—(हर्ष से गद्गद होकर) अच्छा, तुम मेरे साथ चलो। तुम तो मेरे कार्य में साधना हो, निराशा के समय सांत्वना हो, जीवन-पथ में प्रेम-स्रोत हो, मेरी जर्जर नौका को पतवार हो। मेरी बुद्धि भ्रांत हो जाने पर तुम्हारा तत्वज्ञान मेरा पथ-प्रदर्शन करेगा।

चिंता—(सहर्ष, आँसू पोंछकर) नाथ! मैं आपकी अर्द्धांगिनी हूँ। जो गुण आपमें हैं, वे मुझमें भी उपस्थित होने लगें, यह मेरी आंतरिक इच्छा है। मैं स्वयं कुछ भी नहीं हूँ, मैं भला आपका पथ-प्रदर्शन क्या करूँगी?

श्रीवत्स—कुछ मणि-रत्न आदि अमूल्य पदार्थ साथ बाँध लो। ये दुःख में हमारे सहायक होंगे। अभी सारा नगर निद्रा-देवी की गोद में विश्राम कर रहा है। हम रात्रि के घने अंधकार में कहीं निकल चलें। दिन के समय प्रजा-जन ऐसा करने में बाधा डालेंगे।

चिंता—जो आज्ञा। मैं सब सामान अभी तैयार किये लेती हूँ।

[प्रस्थान

श्रीवत्स—देखो ! अब यह कैसी प्रसन्न-वदन दिखाई देती है। पति के साथ धर्मपत्नी का अटूट ....

(एक ओर अट्टहास सुनाई देता है। श्रीवत्स चौंककर उसी ओर टकटकी लगाकर देखते हैं किंतु उन्हें दिखाई कुछ नहीं देता। तब भी उत्सुकता से वे उधर जाने लगते हैं।)

[प्रस्थान

(पट-परिवर्तन)

चौथा दृश्य

स्थान—प्राग्ज्योतिषपुर के बाहर

समय—रात

(महाराज श्रीवत्स और रानी चिंता साधारण वस्त्र पहने दिखाई देते हैं। आकाश में कुछ तारे चमक रहे हैं। महाराज के सिर पर गठरी रखी है, बाईं ओर चिंता है। दोनों चल रहे हैं। पास में गीदड़ों की आवाज़ सुनाई देती है।)

श्रीवत्स—वाह रे भाग्य तेरी लीला! जहाँ सिर पर राजमुकुट होता था, वहाँ अब यह गठरी लदी है! पहले जहाँ आगे-पीछे सेवक रहते थे, वहाँ अब रुदन करते हुए गीदड़ घेर रहे हैं!

चिंता—कुछ परवाह नहीं, मनुष्य को सुख-दुःख दोनों भोगने पड़ते हैं। रात और दिन एक दूसरे का निरन्तर पीछा करते हैं। अब धूप है, क्षण भर में छाया। अब दुःख है, फिर सुख।

श्रीवत्स—मुझे इस समय चिंता है तो यह कि तुम इतने कष्ट कैसे सहन करोगी? स्त्री स्वभाव से ही सुकुमार होती है, दुःख झेलने में असमर्थ होती है, तभी तो स्त्री को अबला कहा है। कहाँ वन के हिंसक जीव और......

चिंता—नाथ! आप स्त्री को केवल अबला ही मत समझिए। समय पड़ने पर वही अबला सबला होकर शत्रु का ध्वंस कर सकती है। महिषासुर-मर्दिनी दुर्गा भी 'अबला' ही हैं और...

श्रीवत्स—कुछ समझ में नहीं आता। कहाँ तो स्त्री ज़रा-सी

बात पर डरकर चीख उठती है और कहीं रुद्र रूप धारणकर संसार को भयभीत कर देती है।...

(एक ओर से " ह्वैं ह्वैं " का शब्द सुनाई देता है. रानी चिंता भयभीत हो जाती है।)

चिंता—हाय ! यह शब्द कैसा है ?

श्रीवत्स—बस, बन गईं सबला ! गीदड़ों के शब्द से घबड़ा गईं ?

चिंता—(मुसकराकर) अच्छा, यह गीदड़ों का शब्द है ? ये रो क्यों रहे हैं ?

श्रीवत्स—हमारे भाग्य का अधःपतन देखकर। धन्य हैं ये जो हमारे दुःख के समय हमारे साथ सहानुभूति दिखा रहे हैं।

चिंता—हमारे चलने की आहट से इस स्थान की नीरवता भंग हो गई जान पड़ती है। रात्रि के ऐसे विकट समय में हमें जाते देखकर ये समझ गये हैं कि हम विपद् के मारे भटक रहे हैं।

श्रीवत्स—गीदड़ो ! प्रसन्न रहो। हम तुम्हारी सहानुभूति के लिए कृतज्ञ हैं। अब से हमें अपना हितैषी समझना। हम तुम्हारे साथ यहाँ विचरा करेंगे।

(पुनः " ह्वैं ह्वैं " का शब्द सुनाई देता है।)

श्रीवत्स—देखो, ये हुंकार शब्द द्वारा हमारे विचार का अनुमोदन रहे हैं।

चिंता—इस समय निशाचर जंतुओं का राज्य है। अपने आपको सृष्टि की उत्कृष्ट रचना मानने वाला मानव-संसार इस

समय निद्रा-देवी की गोद में विश्राम कर रहा है। दुर्भाग्य से धकेले हुए हम दो प्राणी अपना राज-पाट त्यागकर, भाई, बंधु, मित्र, प्रजा आदि को छोड़कर इन निशाचर जंतुओं के राज्य में प्रवेश करते हैं।

श्रीवत्स—यह अवसर हमें परमात्मा की मूक सृष्टि के निरीक्षण के लिए अच्छा मिला।

चिंता—और मुझे आपकी सेवा के लिए अपूर्व अवसर मिला।

("कू ऊ त...कू ऊ त" का शब्द सुनाई देता है।)

चिंता—(कुतूहल से) यह किसका शब्द है ?

श्रीवत्स—यह उल्लू का शब्द है।

चिंता—यह क्या कह रहा है ?

श्रीवत्स—यह हम से पूछ रहा है, किधर जाना है।

(चिंता के पैर में काँटा चुभ जाता है, वह चीख़ उठती है।)

श्रीवत्स—(चीख़ सुनकर) अरे! डर गईं ? (देखकर रुक जाते हैं।)

चिंता—नहीं, डरी नहीं। पैर में काँटा चुभ गया है। वह निकाल रही हूँ।

श्रीवत्स—दिखाओ, मैं निकाल दूँ।

चिंता—अँधेरा है, आपको काँटा दिखाई नहीं देगा। मैं ही निकाल लेती हूँ।

श्रीवत्स—यह काँटा नहीं, शनिदेव का कठोर तीर समझो।

चिंता—न, न, तीर की अनी।

(चिंता काँटा निकालकर चलने लगती है। श्रीवत्स भी चल पड़ते हैं। उल्लू का फिर शब्द सुनाई देता है।)

चिंता—यह देखो, उल्लू फिर बोल रहा है।

श्रीवत्स—भाई उल्लू! क्या बताएँ, कहाँ जायँगे? जायँगे वहाँ, जहाँ भाग्य खींच ले जायगा।

(चलते चलते चिंता का पैर उलटने लगता है, गिरती गिरती बच जाती हैं।)

चिंता—बड़ा अंधकार हो रहा है, हाथ को हाथ नहीं सूझ पड़ता है। कोई पगडंडी नहीं दिखाई देती। ऊबड़-खाबड़ पृथ्वी पर पैर उलटने-सा लगता है।

श्रीवत्स—पैर ही क्या, सारा शरीर, भाग्य, सुख आदि सब कुछ ही उलट गया। प्रभु से हमारी केवल यह प्रार्थना है कि हम सत्पथ से कभी विचलित न हों...

चिंता—रात कैसी भयानक हो रही है!

(दूर से शेर की गर्जना सुनाई देती है। चिंता भयभीत होकर काँपने लगती है।)

श्रीवत्स—शेर की गर्जना रात्रि के समय, सन्नाटे के कारण, दूर-दूर सुनाई देती है। (चिंता चीख उठती है। उसकी चीख सुनकर शीघ्रता से) क्या शेर की गर्जना से डर गईं? (चिंता गिर पड़ती है) अरे! गिर पड़ीं? शेर तो यहाँ से दूर होगा।

(श्रीवत्स सिर पर गठरी को एक हाथ से थामकर दूसरे हाथ से चिंता को उठाते हैं।)

श्रीवत्स—कुछ अधिक चोट तो नहीं लगी ?

चिंता—(मुसकराकर) नहीं, पृथ्वी माता ने विश्राम करने के लिए कहा था, मैं लेटी नहीं। चोट भला क्यों लगती ?

(दोनों फिर चलने लगते हैं। सहसा एक ओर से कुछ प्रकाश दिखाई देता है।)

श्रीवत्स—(प्रकाश देखकर) यह प्रकाश कैसा ? (चिंता की ओर देखकर) अरे ! अरे ! लंगड़ा क्यों रही हो ?

चिंता—लहू बह रहा है। शनि देव कहते हैं लहू अधिक है, निकल जाने दो।

श्रीवत्स—मेरे कारण तुम्हें कितने कष्ट सहन करने पड़ रहे हैं ! अच्छा, शनिदेव की इच्छा ! तुम पैर पर मिट्टी डाल लो, लहू बहना बंद हो जायगा।

(चिंता ऐसा ही करती है, प्रकाश कुछ अधिक हो जाता है।)

चिंता—(प्रकाश देखकर) यह प्रकाश कौन कर रहा है ?

श्रीवत्स—प्रतीत होता है कि सर्प-राज हमें यहाँ आये देखकर अपने अमूल्य मणि दीप से हमारे लिए प्रकाश कर रहे हैं।

चिंता—इस क्रूरात्मा में भी परोपकार का इतना विचार है ? धन्य हो सर्पराज !

श्रीवत्स—हम इन हिंसक जीवों की शरण में आ गये हैं। इनका कर्त्तव्य है शरणागत की रक्षा करना। इसीलिए सर्पराज ने प्रकाश दिखाया है।

चिंता—प्रकाश दिखाते-दिखाते कहीं दूसरा लोक न दिखा दें।

श्रीवत्स—क्या ? तुम्हें दूसरे लोक से भय लगता है ?

चिंता—भय नहीं, अभी हमारी देव-परीक्षा का परिणाम नहीं निकला। इसलिए अभी जीवित रहने की इच्छा है।

श्रीवत्स—हाँ, ठीक कहती हो।

(प्रकाश अधिक निकट आ जाता है।)

श्रीवत्स—यह प्रकाश तो हमारे निकट आ रहा है। सर्पराज की मणि का प्रकाश इतना नहीं हो सकता।

चिंता—क्या संजीवनी बूटी यहाँ बहुतायत से है ? उसका, सुना है, रात के समय प्रकाश होता है। कहाँ.....

श्रीवत्स—(देखकर सविस्मय) यह तो कोई दिव्याकृति चमकती दिखाई देती है।

(नूपुरों की ध्वनि सुनाई देती है।)

चिंता—(दिव्याकृति को और निकट आई देखकर तथा नूपुरों की ध्वनि सुनकर) यह तो माता लक्ष्मी देवी की दिव्य मूर्त्ति जान पड़ती है।

(लक्ष्मी देवी पास आकर खड़ी हो जाती हैं। दोनों प्रणाम करते हैं। लक्ष्मी आशीर्वाद देती हैं।)

श्रीवत्स—मातेश्वरी ! इस समय आपने बड़ी कृपा की !

लक्ष्मी—वत्स ! तुम्हें अँधेरे में चलने से कष्ट हो रहा था। तुम्हारे पथ-प्रदर्शन के लिए प्रकट हुई हूँ। वैसे तो मैं तुम्हारे साथ सदैव हूँ। इस समय प्रत्यक्ष हो गई हूँ।

चिंता—माता ! हम आपके अत्यंत अनुगृहीत हैं। हमारे पास शब्द नहीं कि आपकी इस कृपा-दृष्टि के लिए कृतज्ञता प्रकट कर सकें।

श्रीवत्स—इसमें कहना क्या ? माता लक्ष्मी तो हमारे, तुम्हारे, सबके हृदयों की गूढ़तम बातें जानती हैं, वह अंतर्यामिनी हैं।

लक्ष्मी—पुत्री चिंता ! पुत्र वत्स ! मुझे सदा अपनी ही समझो ! माता अपनी संतान के लिए क्या-क्या नहीं करती ? इस समय तुम मार्ग भूलकर कुमार्ग पर जा रहे थे। इसलिए तुम्हें अधिक कष्ट हो रहा था। जिस मार्ग पर मैं चल रही हूँ वही मार्ग तुम्हारे लिए श्रेयस्कर रहेगा।

श्रीवत्स—माता ! क्या हम वास्तव में मार्ग-भ्रष्ट हो गये ! क्या हमारे जीवन का ध्येय सदा के लिए जाता रहा ? हमारे नित्य के नियम, पूजा, व्रत, पाठ आदि का फल सब व्यर्थ हुआ ?

लक्ष्मी—पुत्र ! तुम इस निर्जन वन का मार्ग भूल गये थे। जीवन का सत्पथ तुमसे पृथक् नहीं हो सकता। तुम आशा का आँचल मत छोड़ो। कर्त्तव्य का सदा पालन करते रहना। शनि द्वारा दिया गया दुःख तुम्हारा कुछ बिगाड़ न सकेगा। कष्टों की आँच में तुम कुंदन के समान निखर पड़ोगे। विधि बलवान् है। तुम अपने न्याय-पथ पर स्थिर रहो। भाग्य के साथ तुम्हारी कलह है। असंख्य कष्ट सहन करने होंगे, असाध्य को सिद्ध करना होगा। तुम्हारी इस सिद्धि को देखने के लिए देवी-देवता सब उत्सुक हैं। निराश मत होना। शनि का क्रोध अधिक से

अधिक बारह वर्ष रहता है। उसके पश्चात् तुम्हें फिर सुख और शांति की प्राप्ति होगी।)

श्रीवत्स—माता ! मैं आपके सद्वचनों के लिए कृतज्ञ हूँ। आप मुझे शक्ति दें कि मैं यह अवधि धैर्यपूर्वक समाप्त कर सकूँ।

लक्ष्मी—(हाँ, यही होगा। पुत्री चिंता ! तुम भी सन्मार्ग से विचलित न होना। सतीत्व-धर्म स्त्री का सर्वोच्च धर्म है। यही स्त्री के लिए परम व्रत है। इसी व्रत द्वारा महान् से महान् विपत्ति और विपरीत शक्ति का सती-साध्वी स्त्री सामना कर सकती है। जब तुम मेरा स्मरण करोगी, तब मैं प्रकट होकर तुम्हारी सहायता करूँगी।)

(दोनों प्रणाम करते हैं। धीरे-धीरे लक्ष्मी अंतर्द्धान हो जाती हैं। चंद्रमा का कुछ अंश प्रकट होता है। श्रीवत्स और चिंता आगे चलने लगते हैं और दृष्टि से ओझल हो जाते हैं।)

(पट-परिवर्तन)

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—एक निर्जन प्रदेश

समय—रात्रि का अवसान

(श्रीवत्स और चिंता चलते हुए दिखाई देते हैं। दोनों के मुँह प्यास से सूख रहे हैं। श्रीवत्स की पीठ पर एक गठरी कंधे पर से लटक रही है।)

चिंता—कहीं कोई जलाशय या नदी नहीं दिखाई दी, इतनी दूर निकल आये। अब प्यास भी अधिक लग रही है।

श्रीवत्स—तुम जानती हो कि जिस वस्तु की आवश्यकता हो वह सुलभ वस्तु भी प्रायः दुर्लभ हो जाया करती है। यही बात इस समय जल की समझो। अब तो तुम थक गई होगी।

चिंता—नहीं तो, मैं थकी नहीं।

श्रीवत्स—मुझे आश्चर्य हो रहा है कि तुम रात भर कैसे चल सकी हो। अवश्य कोई दैवी शक्ति इसका कारण है।

चिंता—माता लक्ष्मी देवी की कृपा समझिए।

श्रीवत्स—हाँ, विष्णु भगवान् की अर्द्धांगिनी सब कुछ कर सकती हैं। (पूर्व दिशा की ओर देखकर) देखो, पौ फट गई।

चिंता—रात के घने अँधेरे में छिपी हुई पृथ्वी अब फिर स्पष्ट दिखाई देने लगी है।

(शीतल वायु का एक झोंका लगता है।)

श्रीवत्स—अहह ! कैसी अच्छी पवन चलने लगी है। प्रातःकाल का समय कैसा सुहावना होता है !

चिंता—तभी तो इसे ब्राह्म-मुहूर्त कहा है। (एक ओर देखकर) उधर देखिए, वह सफ़ेद घाटी-सी दिखाई देती है।

श्रीवत्स—(देखकर, सहर्ष) यह तो कोई नदी जान पड़ती है।

चिंता—(सहर्ष) अच्छा।

श्रीवत्स—कहीं हम भी मृग-तृष्णा के शिकार न हों। (ठंढी हवा के झपेटे अनुभव कर) नहीं ! नहीं ! अवश्य ही कोई नदी पास होगी। नदी के समीप ही ऐसी ठंढी हवा चलती है। चलो, आगे बढ़ें। [दोनों का प्रस्थान

(दृश्य-परिवर्तन)

स्थान—नदी-तट

(श्रीवत्स और चिंता का पूर्वोक्त अवस्था में प्रवेश)

श्रीवत्स—देखो, स्वच्छ जल कैसा चमक रहा है ! यही दूर से सफ़ेद घाटी-सा दिखाई देता था।

चिंता—अब यहाँ स्नान आदि नित्य कर्म से निपटकर फिर आगे बढ़ेंगे।

श्रीवत्स—हाँ, ठीक है। [दोनों का एक ओर प्रस्थान

(एक मनुष्य का गाते हुए दूसरी ओर से प्रवेश)

है वायु बही पुरवैया !

साँसों में सौरभ लाने,
प्राणों में भर मधु-गाने,
आई उन्मत्त बनाने।

पक्षी-गण बने गवैया !
है वायु बही पुरवैया !

आलोक गगन में छाया,
आलोक अवनि पर आया,
कल-गान सरित ने गाया।

हम खेवें अपनी नैया!
हे वायु बही पुरवैया!

पुरुष—चलो, केवल गाने से पेट न भरेगा, नाव चलायें।

हम खेवें अपनी नैया,
हे वायु बही पुरवैया।

[गाते हुए एक ओर प्रस्थान

(श्रीवत्स और चिंता का दूसरी ओर से प्रवेश)

चिंता—देखो न, जल का स्पर्श होते ही सारी थकान बह गई।

श्रीवत्स—(मुसकराकर) हाँ, वह बही जा रही है। थकान का रंग जल जैसा ही है।

चिंता—(मुसकराकर) लालिमा से जल इस समय कैसा रक्त-वर्ण दिखाई दे रहा है।

श्रीवत्स—(मुसकराकर) उषा की लालिमा से या हमारी थकान से ?

चिंता—ऊँह ! आप थकान-थकान कहे जा रहे हैं, मैं तो थकी नहीं।

श्रीवत्स—थकीं न सही। यह तो बताओ क्या जल-स्पर्श से नव-बल का संचार नहीं हुआ ?

चिंता—यह तो जल का स्वभाव है। (कुछ रुककर) अब क्या विचार है ? क्या नदी पार जाना होगा ?

श्रीवत्स—हाँ, इच्छा तो यही है। फिर कोई सहज में हमारा पीछा न कर पायेगा। परंतु यह निर्जन प्रदेश है। क्या मालूम कोई नाव मिले या न मिले।

चिंता—तब तो नाव की प्रतीक्षा में यहीं बैठना होगा।

श्रीवत्स—नहीं, अभी इधर-उधर तट पर जाकर देखते हैं कि कोई ऐसा स्थान हो जहाँ से लोग नदी पार जा सकते हों।

(किसी के गाने का शब्द सुनाई देता है)

यह नौका डग-मग डोले,
छप-छप सरिता-जल बोले,
खेता चल हौले - हौले

तरणी को, चतुर खिवैया !
है वायु वही पुरवैया !

(श्रीवत्स और चिंता गाना सुनकर चौंक पड़ते हैं)

चिंता—अहा ! यहाँ पास ही कोई गा रहा है।

श्रीवत्स—चलो, देखें, कौन है।

(दोनों आगे बढ़ने लगते हैं। गीत फिर सुनाई देता है)

यह नौका डग-मग डोले,
छप-छप सरिता-जल बोले,
खेता चल हौले-हौले

तरणी को, चतुर खिवैया !

चिंता—यह कोई माँझी गा रहा जान पड़ता है।

श्रीवत्स—हाँ, किसी माँझी का गान है। (गायक की ओर देख कर) हाँ, वह देखो कोई माँझी नाव पर बैठा गा रहा है।

चिंता—देखी माता लक्ष्मी की कृपा। अभी नाव की इच्छा की थी, तुरंत नाव आ गई।

श्रीवत्स—माता लक्ष्मी ! तुम्हारा कोटिशः धन्यवाद ! नाव क्या मिल गई, डूबते हुए को सहारा मिल गया।

चिंता—अब चलिए, उधर चलें।

(दोनों माँझी की ओर बढ़ते हैं और श्रीवत्स माँझी को पुकारते हैं।)

श्रीवत्स—माँझी ! हमें नदी पार ले चलेगा ?

(माँझी का प्रवेश)

माँझी—तुम कौन हो जो इतने सवेरे सुनसान में खड़े हो ? (चिंता की ओर देखकर श्रीवत्स से) जान पड़ता है किसी की स्त्री को भगाकर लिये जाते हो।

श्रीवत्स—(क्रोध को दबाकर) भाई माँझी ! मैं कोई ऐसा-वैसा नहीं हूँ। आपद् का मारा हूँ। अपनी स्त्री के साथ कहीं जा रहा हूँ। मेरे प्रति ऐसे हीन कलुषित विचार मत करो।

माँझी—हाँ, सब कोई अपने आपको साहू कहते हैं। मैं इस झमेले में नहीं पड़ता। घर-गृहस्थी वाला भला कौन है जो स्त्री को लिये तड़के ही घर से निकल पड़े। मुझे तो संदेह होता है, क्षमा करो।

श्रीवत्स—भाई माँझी ! मैं एक देश का राजा हूँ, यह मेरी रानी है। मैं दुर्भाग्य का मारा राज-पाट छोड़कर निकल पड़ा हूँ। सो.........

माँझी—(हँसकर) यदि तुम राजा हो तो तुम्हारे नौकर-चाकर कहाँ हैं ? यह वेश कैसा हो रहा है ?

श्रीवत्स—मैं अपने साथ किसी को नहीं लाया। मुझे अपने देश की स्मृति मत दिलाओ। मेरी बात पर विश्वास करो।

माँझी—तो आपमें इस नदी को पार कर जाने की शक्ति है ?

श्रीवत्स—इसमें शक्ति कैसी ? नाव द्वारा सब कोई नदी पार कर लेते हैं।

माँझी—मैं भाग्य की नदी को कह रहा हूँ। क्या सब कोई उसे पार कर सकते हैं ?

यह भाग्य-नदी का पानी,
किसने गहराई जानी ?
इन लहरों की मनमानी
　　　　है हिला रही यह नैया ?
　　　　है वायु वही पुरवैया !

तुम कैसे पार करोगे ?
उस पार कहाँ पहुँचोगे ?
लहरों को जीत सकोगे ?
　　　　है वक्र कर्म-गति भैया !
　　　　है वायु वही पुरवैया !

श्रीवत्स—तुम तो बड़े तत्त्वज्ञानी दिखाई देते हो। हम भी 'कर्मगति' के फेर में पड़े हैं। देखें, हम वह नदी कब और कैसे पार करते हैं। (अँगुली से अँगूठी उतार कर) यह अँगूठी तुम्हें दूँगा, हमें पार ले चलो।

माँझी—(अँगूठी देखकर) भाई ! मेरी नाव छोटी और टूटी-फूटी है। आप दोनों को पार न ले जा सकूँगा। आपके साथ गठरी भी है, मेरी नाव डूब जायगी।

श्रीवत्स—भाई ! एक-एक करके पार ले चलो।

माँझी—हाँ, ऐसे हो सकता है। बताइए, पहले आपको पार ले चलूँ, बाद में गठरी ? अथवा कहिए तो पहले गठरी उधर छोड़ आऊँ, फिर आपको ले चलूँ।

श्रीवत्स—पहले गठरी ले जाओ, फिर हमें ले जाना।

माँझी—तो लाइए गठरी।

(माँझी हाथ बढ़ाता है, श्रीवत्स गठरी पकड़ा देते हैं, माँझी गठरी लेकर गाता हुआ चला जाता है।)

तुम जग में नंगे आये,
जग-रत्नों पर ललचाये,
जब साथ न कुछ जा पाये,

क्यों बनते बोझ ढुवैया !
है वायु बही पुरवैया !

चिंता—(देखकर साश्चर्य) यह क्या ? न नाव है, न नाविक।

श्रीवत्स—(चौंककर) यह क्या ?

(एक ओर से किसी के अट्टहास का शब्द सुनाई देता है।)

श्रीवत्स—यह देखो, चिंता ! शनि देव हमारा उपहास कर रहे हैं। यह सब शनि देव की माया का प्रसार था। वे हमारे रत्न, मणि, भूषण सब हर ले गये।

चिंता—(गंभीरतापूर्वक) अच्छा, उनकी इच्छा ! जब हमने सारा राज-पाट त्याग दिया है तब इतने से आभूषणों के लिए कैसी चिंता ? ईश्वर जो करता है, अच्छा ही करता है। अब हमें किसी प्रकार का भय नहीं रहेगा।

श्रीवत्स—शनिदेव ! धन्यवाद ! मैं वीर पुरुष हूँ, मेरी भुजाओं में बल है। मैं बिना धन के अपना काम चला लूँगा। आँधी से वृक्ष ही हिला करते हैं, पर्वत नहीं। वे अटल भाव से मूसलाधार वृष्टि और आँधी के झपेटे सह लेते हैं। अतएव मैं विपद् में अटल रहने का प्रयत्न करूँगा। धन्यवाद ! शनिदेव ! धन्यवाद ! (पूर्व दिशा की ओर देखकर) अब सूर्य देव की लालिमा भली भांति फैल गई।

चिंता—(पूर्व दिशा की ओर देखकर) सूर्य देव ! प्रणाम स्वीकार हो ! आप हम पर कृपा-दृष्टि रखें।

(एक ओर से अट्टहास का शब्द सुनाई देता है। श्रीवत्स और चिंता उधर ही जाने लगते हैं।)

(पट-परिवर्तन)

छठा दृश्य

स्थान—प्राग्ज्योतिषपुर

समय—दिन का पहला पहर

(राज-मार्ग पर कुछ नागरिक खड़े वार्तालाप कर रहे हैं। महाराज श्रीवत्स और चिंता के न मिलने पर सब व्याकुल हो रहे हैं।)

पहला—कुछ समझ में नहीं आता।

दूसरा—समझ में क्या आये? कहा नहीं कि दुःख के समय बुद्धि नष्ट हो जाती है।

तीसरा—महाराज सदा हमारे हित की चिंता किया करते थे।

चौथा—'थे' ऐसा क्यों कहते हो? हमारे महाराज जीवित हैं, अवश्य जीवित हैं।

पाँचवाँ—तुम यह कैसे कहते हो?

चौथा—यदि यह बात सत्य न हो तो लक्ष्मी का बड़प्पन कैसा? वह अवश्य महाराज की रक्षा करेंगी।

दूसरा—कदाचित् माता लक्ष्मी देवी ही उन्हें अपने पास ले गई हों।

पहला—क्या जानें? शनि भी तो उन्हें ले जा सकता है!

तीसरा—यदि शनि उन्हें हर ले गया हो तो सब नष्ट हो गया।

चौथा—और यदि महाराज हमारा दुःख देखकर स्वयं ही देश त्यागकर कहीं चले गये हों?

पाँचवाँ—भाई तुम चाहे कुछ कहो, मुझे तो यहाँ शनि पिशाच की माया का ही प्रसार जान पड़ता है।

तीसरा—शनि हमारे पीछे बुरी तरह पड़े हैं। अपना बल दिखाना है तो दिखाएँ लक्ष्मी देवी पर।

पहला—विष्णु देव जो वहाँ बैठे हैं। उनके सामने शनि के पिता की भी कुछ न चले, शनि भला क्या है ?

दूसरा—तो उसके क्रोध की बलि हम ही हैं।

चौथा—सब कोई निर्बल को ही दबाते हैं।

पाँचवाँ—यह तो आततायियों का-सा काम है। ऐसा देवताओं के लिए उचित नहीं। उन्हें तो हमारे लिए आदर्श स्थापित करना चाहिए।

चौथा—अजी साधारण देवताओं की बात छोड़ो। देवराज इंद्र को ही लो। जब कोई राजा सौ यज्ञ पूरे करने लगता है तो वे ईर्षाग्नि में जलने लगते हैं और किसी न किसी प्रकार बाधा पहुँचाकर यज्ञ रुकवा देते हैं। यह कहाँ का न्याय है ? न्याय सब सबल के लाभ के लिए है।

दूसरा—तुम तो केवल इंद्र का नाम लेते हो। अमृत-मंथन के समय, सुना है, क्या हुआ था ? देवता लोग सारा अमृत आप ही हड़प जाना चाहते थे। वे असुरों को सूखा ही टालना चाहते थे। विष्णु देव ने माया द्वारा मोहिनी-रूप धारण कर असुरों को छला और सारा अमृत देवताओं को ही पिला दिया। सौभाग्य से एक असुर को अमृत मिल गया। विष्णु देव ने अपनी भूल

देखकर झट उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। यह सब क्यों हुआ ? बताओ, न्याय के लिए अथवा अन्याय के लिए ? क्या असुरों ने अमृत-मंथन में परिश्रम नहीं किया था ?

पाँचवा—ऐरावत, लक्ष्मी आदि आदि रत्न जो समुद्र में से निकले थे, वे भी तो देवताओं ने ले लिये।

पहला—तो इन कथानकों का हमारे साथ क्या संबंध ?

दूसरा—बलवान् निर्बल को दबा लेते हैं।

तीसरा—ऊँहूँ ! कभी-कभी निर्बल भी अपने प्रतिद्वंद्वी को आड़े हाथों लेता है। जिसके कर्म बलवान् हैं, उसका भाग्य बलवान् है, जिसका भाग्य बलवान् है उसका पक्ष बलवान् है और वही अजेय है। हाँ, अपनी कर्म-रेखा को कोई मिटा नहीं सकता। जो दुःख भोगना लिखा है, उससे मुक्ति नहीं हो सकती।

चौथा—अरे छोड़ो इन दूर की बातों को। हमें तो संबंध अपने महाराज श्रीवत्स से है। जब तक वे...(पुरोहित की ओर देखकर) देखो, पुरोहितजी आ रहे हैं, उनसे महाराज के विषय में पूछते हैं।

(पुरोहित का कुछ सोचते हुए प्रवेश)

पुरोहित—शनि ! दे लो दुःख जितना देना चाहो, परंतु जैसे सोना तपाने से निखरता ही है, वैसे ही श्रीवत्स का चरित्र उज्ज्वल ही निकलेगा। उसे हर ले गये हो, तो क्या हुआ ? तुम्हारा कुछ बस न चलेगा।

(नागरिक पास पहुँच कर साभिवादन)

पहला—पुरोहितजी ! महाराज के विषय में आपकी विद्या क्या बताती है ?

पुरोहित – मेरी विद्या बताती है कि शनि की अंत:प्रेरणा से महाराज श्रीवत्स और रानी चिंता देश त्याग कर कहीं चले गये हैं।

दूसरा—तो समझो कि शनि के चंगुल में फँस गये हैं। अब उनका शीघ्र लौटना कठिन है।

तीसरा—तब क्या किया जाय ?

पुरोहित—व्याकुलता से काम नहीं चलेगा। माता लक्ष्मी देवी से कृपा-दृष्टि रखने के लिए प्रार्थना करो।

दूसरा—(उत्तेजित होकर) हम महाराज की खोज करेंगे।

तीसरा—इससे कुछ न बनेगा। खोज उसकी को जाती है जो असावधानता से खो गया हो और फिर अपने सजातीयों से मिलने की इच्छा करता हो। यहाँ तो यह बात है नहीं। महाराज हमें देख कर भी छिप जायँगे, हमारे सब प्रयत्न निष्फल रहेंगे।

पुरोहित—देव-शक्ति से मानव-शक्ति का भला सामना हो सकता है ?

(शनिदेव सहसा प्रकट होकर)

शनि—(सक्रोध) सामना करने दो। ये दुष्ट उस श्रीवत्स से

भी बढ़ गये। वह मुझे 'देव' कह कर पुकारे, ये नर-दुष्ट मुझे 'पिशाच' कहें। ठहरो, अभी सबको ठीक ठिकाने लगता हूँ।

(क्रोध से हाथ मसलता है। भूकंप आता है। लोग डरकर इधर-उधर भागने लगते हैं। कई मकानों के गिरने का शब्द सुनाई देता है।)

शनि—अहा हा हा ; मेरे मित्र भूकंप! तुमने इन्हें उचित दंड दिया। अब नगर शीघ्र ही न बसेगा। [हँसते हुए प्रस्थान

(पटाक्षेप)

तीसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—निर्जन वन

समय—मध्याह्न के पश्चात्

(श्रीवत्स और चिंता का प्रवेश)

श्रीवत्स—बड़े सरल-हृदय ग्रामीण थे। हम पर इतना प्रेम ! बलिहारी हुए जाते थे।

चिंता—हमें कुटिया में न देखकर उन बेचारों के हृदयों पर साँप लोटने लगते थे।

श्रीवत्स—किस प्रेम और लगन से उन्होंने हमारे लिए कुटिया तैयार की थी। इतनी भक्ति और श्रद्धा सेवक में भी नहीं पाई जाती।

चिंता—परंतु हमारे कारण उन पर भी शनि ने कोप करना आरंभ कर दिया। हमसे उन्हें सुख के बदले दुःख ही मिला।

श्रीवत्स—हाय ! हमारे कारण उन्हें पानी तक पीने को न मिलता था। प्रत्येक जलाशय में कीड़े रेंगते दिखाई देते थे। फल तो केवल कीड़ों की थैली हो रहे थे।

चिंता—हमें तो शनिदेव द्वारा ऐसा कांड रचे जाने की आशंका थी ही। इसीलिए हमने उन्हें बहुतेरा मना किया था कि हमें न

रोको। परंतु वे मानते नहीं थे। भलाई का बदला बुराई, यही शनि देव का न्याय है। यह उन्हें विदित न था।

श्रीवत्स—मुझे शोक है कि मैं भी उनकी बातों में आ गया। हम तो शनि देव के ऐसे कौतुक देखते-देखते अभ्यस्त हो गये हैं।

चिंता—परंतु अब भी शनि देव का क्रोध शांत हो जायगा, यही आशा हमें उन लोगों के साथ रह जाने को बाध्य करती रही।

श्रीवत्स—अच्छा, शनिदेव की इच्छा। हमें जितना चाहें, दुःख दे लें, परंतु वे हमें न्याय-पथ से तनिक भी विचलित नहीं कर पायेंगे। श्रीवत्स दुःख-संकट से भयभीत होने वाला नहीं।

चिंता—अब तो दोपहर हो गई। अभी अँधेरा ही था, जब हम चल पड़े थे। अब हम इतनी दूर निकल आये हैं कि वे हमें पा नहीं सकेंगे। अब कुछ खाने का प्रबंध किया जाय?

श्रीवत्स—यही मैं सोच रहा था। परंतु खाया क्या जाय?

चिंता—उसी गाँव के कुछ फल हैं। यहाँ तो कोई फल दिखाई नहीं देते। कुछ आगे चला जाय।

श्रीवत्स—और कहाँ तक अब चला जाय? तुम्हारा मुख मुरझा रहा है। तुम थक गई जान पड़ती हो। भूख और प्यास मनुष्य को शीघ्र ही व्याकुल कर देते हैं। अच्छा, वही फल निकालो, कदाचित् कुछ अच्छे निकल आयें।

चिंता—अच्छा, तो बैठ जाइए।

(दोनों बैठते हैं, चिंता एक छोटी-सी गठरी खोलकर फल निकालती और एक-एक करके उन्हें तोड़ती है ।)

चिंता—(एक फल तोड़कर) आह ! यहाँ भी वही बात ! इस में भी कीड़े हैं। (पहला फल फेंक देती हैं और दूसरा फल तोड़ती हैं।) ऊँह ! इसमें भी। (फेंक देती हैं।)

श्रीवत्स—तो जाने दो। शनि देव की यही इच्छा है कि हम खाये विना तड़प-तड़प कर प्राण त्याग दें। (खड़े हो जाते हैं।)

चिंता—(खड़े होकर) स्वामी ! अधीर न हों। माता लक्ष्मी देवी के उपदेश का ध्यान रखें। सब ठीक हो जायगा। आप जैसे वीर पुरुष व्याकुल नहीं होते।

श्रीवत्स—हाय ! मेरी धर्मपत्नी भूख से व्याकुल हो ! विधाता ! यह क्या लीला हो रही है ?

चिंता—परीक्षा, नाथ। आप मेरा कुछ विचार न करें। स्त्रियों को भूख अधिक पीड़ा नहीं देती। स्त्री जाति व्रत-उपवास से प्रेम रखती है, अतएव भूख से उसे कुछ क्लेश नहीं होता। आइए, आगे बढ़िए, कदाचित् कोई फलवाले वृक्ष मिल जायँ।

श्रीवत्स—अच्छा, बढ़ो चलो। (धीरे-धीरे चलते हैं)

(नेपथ्य में वार्तालाप का शब्द सुनाई देता है)

एक—अरे। उधर देखो, वे कौन आ रहे हैं ?

दूसरा—कोई बटोही होंगे, यहाँ के रहनेवाले नहीं दीखते। चलो, देखें।

(कुछ ग्रामीणों का प्रवेश। एक के हाथ में एक मछली लटक रही है।)

एक—(देखकर) यात्री हैं।

दूसरा—आज दिन अच्छा है जो अतिथि-देव के दर्शन हुए। आओ, इनका स्वागत करें।

तीसरा—हमारे पास इस समय कुछ खिलाने को तो है ही नहीं। इनका स्वागत क्या करेंगे।

चौथा—भाई! स्वागत तो मधुर शब्दों से भी हो जाता है। इन्हें देखकर तो बिना मिले नहीं जाना चाहिए।

पहला—और यह जो उसके हाथ में (एक ग्रामीण की ओर संकेत करता है) है, इसी से अतिथि पूजा की जाय।

तीसरा—अरे बढ़े चलो। यहाँ पास कुछ नहीं तो क्या हुआ? उन्हें अपने गाँव को ले जायँगे।

(ग्रामीण श्रीवत्स और चिंता की ओर बढ़ते हैं। श्रीवत्स उन्हें देखकर रुक जाते हैं।)

ग्रामीण—प्रणाम हो, अतिथि देव!

श्रीवत्स—सज्जनो! भगवान् तुम्हें सानंद रखें।

एक—(धीरे से) स्वर से ये कोई महापुरुष जान पड़ते हैं।

दूसरा—(मुसकरा कर, धीरे से) स्वर से या आकृति से?

पहला—(मुसकरा कर धीरे से) अच्छा, दोनों ही से।

चौथा—अतिथिदेव! हमारे योग्य सेवा कहिए।

(श्रीवत्स गहरी साँस लेकर चुप रहते हैं।)

तीसरा—महानुभाव! धृष्टता क्षमा हो। कृपया बताइए। आपने जन्म से कौन-सा कुल सुशोभित किया है?

श्रीवत्स—मैं एक दुखिया हूँ? मेरे जन्म से क्या?

दूसरा—श्रीमान् ! दुखिया तो सारा संसार ही है।

तीसरा—क्या हम लोग आपका शुभ नाम जान सकते हैं ?

श्रीवत्स—मैं शनि द्वारा पीड़ित हूँ। मेरे नाम-धाम से क्या ?

दूसरा—अहो ! क्या आप ही प्राग्देश-नरेश हैं ? आप ही महाराज श्रीवत्स हैं और ये (चिंता की ओर संकेत करके) महारानी चिंता ?

तीसरा—महाराज ! हम आपकी न्याय-गाथा सुन चुके हैं। आप हम से छिपे नहीं रह सकते। बताइए, हमारा अनुमान ठीक है ?

श्रीवत्स—हाँ, आपका अनुमान ठीक है। आप अपना परिचय दें।

पहला—हम लकड़हारे हैं। चंदन की लकड़ी काटकर अपना निर्वाह करते हैं।

चौथा—महाराज ! मैं एक तुच्छ वस्तु भेंट करता हूँ। (मछली आगे बढ़ाता है) यह ....

तीसरा—यह क्या मूर्खता कर रहे हो ? महाराज के स्वागत में छत्तीस पदार्थों के बदले एक-मात्र मछली दे रहे हो ! छिः !

चौथा—(खिसियाकर) मुझ से बड़ा अपराध हो गया, क्षमा कीजिए।

श्रीवत्स—महानुभाव ! इसमें अपराध क्या ! भेंट कैसी भी हो, शिरोधार्य है। लाइए।

चौथा—यह मछली शनि की दशा के लिए विशेष लाभदायक है। आपके लिए यह मछली अच्छी रहेगी।

(मछली नीचे रख देता है)

चिंता—(धीरे से) यदि इस प्रकार शनि देव का कोप शांत हो जाय तो यह एक सरल उपाय है।

श्रीवत्स—मेरा मन नहीं मानता। ब्रह्म-रेखा कोई मिटा नहीं सकता। जो दुःख हमें भोगना है, वह भोगे बिना हमारा छुटकारा नहीं हो सकता।

दूसरा—महाराज ! यह एक उपाय है, कर देखिए। आशा है भगवान् कुशल करेंगे।

तीसरा—अरे ! भागकर घर से कुछ और क्यों नहीं ले आते ?

पहला—(धीरे से) इन्हें अपने गाँव को ले चलो।

तीसरा—(धीरे से) हाँ, ठीक कहा। पहले वहाँ इनके स्वागत की तैयारी कर आयें।

चौथा—महाराज ! हम अभी लौटकर आते हैं। आप उतनी देर में यह मछली भून कर खाइए।

[सिर झुकाकर लकड़िहारों का प्रस्थान

चिंता—अच्छा, तो मैं यह मछली भून लाऊँ। आप इसी से अपनी भूख मिटायें। एक पंथ दो काज। यदि शनि की कोप-दृष्टि भी हट जाय, तो इससे अधिक और क्या चाहिए ?

श्रीवत्स—तुम्हारी इच्छा। [चिंता का मछली लेकर प्रस्थान

श्रीवत्स—भूख भी विचित्र वस्तु है। इस दग्ध उदर की ज्वाला सारे शरीर को निःशक्त कर देती है। इसी पापी पेट के लिए विश्वामित्र ने कुत्ते का मांस खाया था।

(डबडबाई आँखों से चिंता का प्रवेश)

चिंता—नाथ ! मछली भूनकर धो रही थी, कुत्ता ले गया। अब आप क्या खायेंगे ? (चिंता के गालों पर आँसू टपक पड़ते हैं।)

श्रीवत्स—वाह ! रोना कैसा ? शनि देव को प्रसन्न हो लेने दो।

चिंता—(आँसू पोंछकर ऊपर की ओर देखकर) शनि देव ! जितना चाहो मुझे दुःख दे लो। परंतु आप मेरे स्वामी पर क्रोध न करें। वह उपाय तो मैंने ही बताया था। आप मुझे ....

श्रीवत्स—वाह ! इतनी-सी बात पर जी छोटा कर रही हो। जितने दिन जीना है, उतने दिन बिना कुछ खाये भी जीते रहेंगे, फिर सोच-विचार कैसा ?

चिंता—माता लक्ष्मी ! वह उपाय मेरा था, मुझे चाहे कितने भी कष्ट सहने पड़ जायँ, परंतु मेरे स्वामी को.........

(सहसा लक्ष्मी देवी प्रकट हो जाती हैं और चिंता के सिर पर हाथ फेरती दिखाई देती हैं।)

श्रीवत्स और चिंता—(लक्ष्मी को देखकर) माता लक्ष्मी जय !

लक्ष्मी—तुम व्याकुल मत हो। मेरे साथ आओ। अभी क्षुधा शान्त हो जायगी। [सब का प्रस्थान

(पट-परिवर्तन)

दूसरा दृश्य

स्थान—श्रीवत्स की कुटिया

समय—दोपहर

(श्रीवत्स और चिंता विचार-मग्न बैठे हैं। उनके सामने तोते का पिंजड़ा टँगा है। एक वृद्ध तोते को कुछ फल खिला रहा है।)

वृद्ध—भाई! मेरे विचार में तो आप शनि को बड़ा कहकर सब झगड़ा दूर कर दें।

श्रीवत्स—यह नहीं हो सकता। न्याय-पथ एक ही होता है। उस पर मैं......

वृद्ध—यह तो आपका हठ है।

चिंता—सचाई के लिए हठ करना कोई दोष नहीं।

वृद्ध—आप तो नीति जानते हैं, फिर मेरी बात मानने में आनाकानी कैसी?

श्रीवत्स—नीति तो कपट का दूसरा नाम है। कपट से मेरा कुछ संबंध नहीं।

वृद्ध—कैसे समझाऊँ!

(नेपथ्य में गाना सुनाई देता है। सब चौंक कर उधर देखने लगते हैं)

रे नर, साहस को मत छोड़!

पथ के काँटे खून बहा लें,
सिर के वज्र टूक कर डालें,

(महर्षि नारद का प्रवेश । सब महर्षि को देखकर शीश झुकाते हैं । महर्षि एक हाथ से आशीर्वाद देते हैं और गाते हैं ।)

विपदाएँ　भरपूर　सता लें ;
　　पर तू स्नेह न हरि से तोड़ !
　　रे नर, साहस को मत छोड़ !

सत्पथ पर ही पाँव बढ़ाना ,
कभी न अपना धर्म गँवाना ,
सत् पर अपना शीश चढ़ाना ,
　　मुख न न्याय से अपना मोड़ ,
　　रे नर, साहस को मत छोड़ ।

श्रीवत्स—(हाथ जोड़े हुए) महर्षि ! आज आपका दर्शन पाकर हृदय-कमल खिल उठा । मेरे अहोभाग्य !

चिंता—देवर्षि ! आपने इस बार चिरकाल में दर्शन दिये ।

नारद—(बिना सुने) धन्य हैं आप ! आपका विचित्र साहस और अगाध धैर्य प्रशंसनीय है ।

श्रीवत्स—आप पूज्य जनों के आशीर्वाद से ही ऐसा हो सका है । शक्ति का मूल उद्गम स्थान तो देवता ही हैं ।

नारद—शनि देव अपने आपे से बाहर हो रहे हैं, परंतु मुँह की खायँगे । लक्ष्मी से शत्रुता ! नारायण ! नारायण !!

चिंता—उनकी जो इच्छा हो कर लें । किंतु उनका इस प्रकार मनोरथ सिद्ध न हो सकेगा ।

वृद्ध—ऐसा भी भला देवता क्या जो मनुष्य को धोखा दे ! शनि ने छल से इनके सब रत्न हर लिये !

नारद—नारायण ! नारायण !! शनि देव, छल-कपट देवता को शोभा नहीं देता। हाँ, एक बात और, माया का प्रसार उसे दिखाना चाहिए जो उसका उत्तर दे सके।

वृद्ध—रत्न आदि हर कर ही शनि शांत नहीं हुए। ये फल-मूल खाकर निर्वाह कर लेते थे परंतु शनि देव यह भी सहन न कर सके। उनमें कोड़े डाल दिये।

नारद—नारायण ! नारायण !! इतनी निष्ठुरता !

वृद्ध—ये स्वच्छ जल द्वारा ही तृप्त हो जाते थे, शनि देव ने उसमें भी कीड़े और दुर्गंध डाल दिये।

नारद—नारायण ! नारायण !!

वृद्ध—कई बार हिंसक जीव इनके प्राण लेने को ही थे परंतु......

नारद—मैं यह क्या सुन रहा हूँ ? श्रीवत्स और चिंता के पवित्र शरीरों पर हिंसात्मक जीव आक्रमण करें। नारायण ! नारायण !!

श्रीवत्स—(वृद्ध से) महाशय ! इन बातों का बखान करने में क्या रखा है ? जाने दो।

वृद्ध—(श्रीवत्स का कथन बिना सुने) महर्षि ! एक बार मूसलाधार वर्षा हो रही थी। बिजली जोर से गरजी और इन पर गिरने लगी। परंतु किसी ने उसे बीच में ही लुप्त कर दिया, और इनकी रक्षा हो गई।

नारद—हैं ! आप पर इंद्रदेव के वज्र का कोप ! शनि का यह कुचक्र ! अच्छा, समझ गया ! धिक्कार है !

श्रीवत्स—महर्षि ! आप ऐसे वचन न कहें। इससे देव के देवत्व की मर्यादा भंग हो जायगी।

नारद—धन्य हो तुम ! परंतु देव हो या दैत्य, सुर हो या असुर, जैसा कोई कर्म करेगा, वैसा फल पायेगा। जो जैसा बोयेगा, वैसा काटेगा। यदि शनि ऐसी घृणित लीला रचेगा, तो क्या उसे कोई कुछ न कहेगा ?

चिंता—देवर्षि ! आप भी देव-अंश से युक्त हैं, आपको हम किसी बात से रोक नहीं सकते। केवल आपसे हमारा यही नम्र निवेदन है कि आप हमारे सामने उनको........

नारद—हाँ, कहो कहो। रुक क्यों गईं ?

चिंता—मैं आपको रोक नहीं सकती, क्या कहूँ ?

नारद—अहो ! आश्चर्य है तुम्हारे चरित्र पर ! शनि तुमसे शत्रुता करे, तुम्हारा प्राण हरने का प्रयत्न करे और तुम्हें उसके नाम पर 'धिक्कार' शब्द बुरा लगे। नारायण ! नारायण !! प्रभो ! ऐसे महात्माओं पर ईश्वर ही कृपा करें।

चिंता—जब हम अकेले किसी समय कुछ खाने लगते हैं तब हमें बहुत बुरा लगता है। झट यह विचार घेर लेता है कि कहाँ हम सैकड़ों पुरुषों को भोजन कराते थे, कहाँ अब यह दशा !

नारद—नारायण ! नारायण !! लक्ष्मी के भक्तों की यह दशा ! अच्छा, धीरज रखो, कल्याण होगा।

श्रीवत्स—महर्षि ! धीरज ही से हमारे कष्ट के इतने वर्ष व्यतीत हो सके हैं। आशा है इसी से हमारा शेष संकट कट जायगा।

नारद—श्रीवत्स ! चिंता ! तुम्हारी यह दीन-हीन दशा देख कर, मेरा हृदय द्रवीभूत हो गया। चलता हूँ, कोई उपाय सोचता हूँ।

[सब उनके पीछे-पीछे जाते हैं। नारद का 'रे नर, साहस को मत छोड़' गाते हुए प्रस्थान

(पट-परिवर्तन)

तीसरा दृश्य

स्थान—विष्णु-लोक

समय—सायंकाल से पूर्व

(महर्षि नारद का गाते हुए प्रवेश)

करो रे स्वार्थ-सिद्धि अभिराम !

स्वार्थ सृष्टि का मूल तत्त्व है, स्वार्थ इष्ट अभिराम।
स्वार्थ-सिद्धि है धर्म विश्व का, स्वार्थ ईश का नाम।
अपना मतलब साधो भाई, छोड़ो सारे काम।
स्वार्थी नर को स्वर्गलोक में मिलता सुंदर धाम।

करो रे स्वार्थ-सिद्धि अभिराम !

(नेपथ्य में)

"यह कौन गा रहा है ? महर्षि नारद का स्वर प्रतीत होता है। देखूँ।"

(लक्ष्मी-देवी का प्रवेश। यथोचित शिष्टाचार के पश्चात्)

लक्ष्मी—महर्षि आज स्वार्थ की महिमा क्यों गाई जा रही है ?

नारद—स्वार्थ ! अहा ! कैसा सुंदर शब्द है ! स्वार्थ की महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता !

लक्ष्मी—आज आप किस लोक से आ रहे हैं ? स्वार्थ-स्वार्थ ही रट रहे हैं।

नारद—देवी ! किस लोक से आ रहा हूँ, ऐसा पूछने का क्या प्रयोजन ? यह पूछो, किस लोक को आ रहा हूँ।

लक्ष्मी—इसका क्या पूछना ? आप हमारे यहाँ आ रहे हैं।

नारद—" हमारे यहाँ " नहीं, नहीं, कदापि नहीं। मैं स्वार्थ-लोक, न, न, विष्णु-लोक को आ रहा हूँ।

लक्ष्मी—(साश्चर्य) आप क्या कहना चाहते हैं ? जो इष्ट हो, वह स्पष्ट कहिए।

नारद—आप यहाँ आनंद में हैं। अपने भक्त श्रीवत्स की भी चिंता है ? अथवा अपना स्वार्थ पूरा करना था, सो कर लिया !

लक्ष्मी—वाह ! इसी कारण " स्वार्थ-स्वार्थ " का पाठ हो रहा था ! महर्षि ! वास्तव में मेरे चुप रहने का एक कारण है।

नारद—वह क्या ?

लक्ष्मी—कई बार पुरुष आपत्ति पड़ने पर अपना मंतव्य परिवर्तन कर लेते हैं। मैं यह देखना चाहती हूँ कि श्रीवत्स दुःख सहन करने पर भी अपने पहले निर्णय पर ही दृढ़ रहता है या नहीं। इससे उसके चरित्र की महत्ता प्रकट होगी। उसकी पूर्ण परीक्षा होगी, और हमारे विवाद का पूर्ण निर्णय।

नारद—(गंभीर होकर) श्रीवत्स को दुःख में फेंकने का मूल कारण मैं ही हूँ। इसका पाप मुझे अवश्य लगेगा।

लक्ष्मी—महर्षि ! आप कुछ विचार न करें। मूल कारण आप नहीं, विधाता है। विधि के विधानानुसार सारा संसार चल रहा है। सब कोई अपने-अपने कर्म भोगते हैं। आपका इसमें

कुछ अपराध नहीं। श्रीवत्स के भाग्य में शनि का कोप सहन करना लिखा था, सो भोग रहे हैं। आप चिंतित न हों।

नारद—तो अभी शनि-कोप की अवधि कितनी शेष है ?

लक्ष्मी—आठ वर्ष व्यतीत हो गये। चार वर्ष शेष हैं ?

नारद—दुःख का तो एक-एक दिन भी एक-एक वर्ष के समान प्रतीत होता है, चार वर्ष का क्या ठिकाना ! (सोचकर) देवी ! मेरा एक निवेदन है।

लक्ष्मी—आज्ञा कीजिए।

नारद—श्रीवत्स पर दया कीजिए, उसका दुःख-भार न्यून कीजिए।

लक्ष्मी—महर्षि ! मैं तो पहले ही श्रीवत्स के कल्याण के लिए तत्पर हूँ। आप उसकी चिंता न करें। आप उसका अथाह धैर्य और अक्षीण न्यायशीलता देखकर विस्मित हो जायँगे।

नारद—जो आपकी इच्छा ! चलता हूँ। नारायण ! नारायण !!

[नारद का 'नारायण-नारायण बोल' गाते हुए प्रस्थान

(पट परिवर्तन)

चौथा दृश्य

स्थान—इंद्रलोक के समीप

समय—दोपहर के पहले

(शनिदेव क्रोधावेश में आते दिखाई देते हैं)

शनि देव—अपमान अमोघ अस्त्र है। शस्त्र-अस्त्र देह को काटते हैं, अपमान हृदय को सैकड़ों बाणों से बींधता है। अपमान मर्म-भेदी है। इसीलिए स्वाभिमानी मान-रक्षा के लिए मर मिटते हैं। मेरा भी अपमान हुआ है, वह भी एक तुच्छ मनुष्य द्वारा ! इस अपमान से मैं जला जा रहा हूँ। जहाँ जाता हूँ, मेरे अपमान की चर्चा पहुँच चुकी होती है। यह सब लक्ष्मी का काम है। अस्तु, इतना अच्छा है कि इंद्र मेरे पक्ष में हैं। वे भला अबला को सबला कैसे मान सकते हैं ? कहाँ मैं और कहाँ लक्ष्मी ! आकाश-पाताल का अंतर है। मेरा जन्म स्वर्ग-लोक में हुआ, लक्ष्मी का समुद्र में, जहाँ नदियों द्वारा सारे संसार का मल आता है। छिः ! छिः !! लक्ष्मी बड़ी है ! कभी नहीं। अब वह श्रीवत्स की सहायता क्यों नहीं करती ? शक्ति हो तब न ! उसके भक्त भूखे हैं, खाने को कुछ नहीं, वह उन्हें कुछ खाने को क्यों नहीं देती ? मैं तो इसी प्रकार श्रीवत्स को दुःख देता रहूँगा जब तक कि वह कह न दे " शनि-देव ! क्षमा करो। आप बड़े हैं।"

(आकाशवाणी होती है)

"वह ऐसा कभी नहीं कहेगा। तुम्हें जो करना हो कर लो।"

शनि—अच्छा ! लक्ष्मी ! तुम्हारा यह गर्व ! तुम्हारा अहंकार चूर-चूर कर दूँगा।

(गीत का शब्द सुनाई देता है)

मन, मत कर इतना अभिमान !

खूब सजाई कंचन काया,
सोना चाँदी द्रव्य कमाया,
निशि-दिन श्रम कर जोड़ी माया,
जिस दिन यम का रथ घर आया,
किया अकेले ही प्रस्थान।
मन, मत कर इतना अभिमान !

शनि—(चौंककर) हैं ! यह कौन गा रहा है ?

(महर्षि नारद का प्रवेश। वे वीणा बजाने में तल्लीन दिखाई देते हैं।)

शनि—महर्षि ! आज कौन-सा राग अलापा जा रहा है ?

नारद—(उधर देखकर) अहो ! शनि देव, आजकल आप इधर बहुत आते-जाते हैं।

शनि—तो इसमें आपकी क्या बुराई हो गई ?

नारद—मेरी बुराई क्या होगी ? मुझे तो कुछ चिंता नहीं।

(गाने लगते हैं।)

मन, मत कर इतना अभिमान !

ऊँचे गिरि भी झुक जाते हैं,
महल धूल में मिल जाते हैं,

मुकुट नृपों के छिन जाते हैं,
सब 'विनाश' में छिप जाते हैं

धन-वैभव यौवन, सम्मान,
मन, मत कर इतना अभिमान !

शनि—(कुछ चिढ़ कर) महर्षि ! आज आप क्या गा रहे हैं ? इसका तात्पर्य क्या है।

नारद—आज आप क्रुद्ध जान पडते हैं। आपके क्रोधावेश का क्या कारण है ?

शनि—कारण ! श्रीवत्स ही इसका कारण है। आप ही ने उसकी प्रशंसा की थी न ?

नारद—प्रशंसा तो मैंने की थी, अब भी करता हूँ।

शनि—तो यह कहिए कि मेरे अपमान में आपका भी हाथ है।

नारद—नारायण ! नारायण !! नारद को किसी के मान-अपमान से क्या ? वह तो संसार-पथ का यात्री है। निर्विकार होकर जगत् के घटना-क्रम को देखा करता है, और आनन्द-विभोर होकर अपनी वीणा पर भगवान् की महिमा गाता है।

शनि—मैं जानता हूँ, नारद ! तुम बड़े भोले बनते हो। तुमने संसार में न जाने किस-किस को नाच नचाया ? यह भी तुम्हारा ही प्रपंच होगा।

नारद—कुछ भी हो, इतना तो सबको दिखाई देता है कि श्रीवत्स को जो निर्णय सूझ पड़ा, उसने कर दिया। इसमें उसने

कोई छल-कपट नहीं किया। किसी प्रकार का लाग-लगाव नहीं रखा। फिर उस पर दुःख-संकट की काली घटा क्यों ?

शनि—(सक्रोध) यदि आपका हृदय उसका दुःख देखकर करुणा से प्लावित हो रहा है तो आप उसकी सहायता करें।

नारद—नारायण ! नारायण !! मैं इस झमेले में नहीं पड़ता। आप जानें और श्रीवत्स । जो मेरा विचार था, वह मैंने कह दिया, आगे आपकी इच्छा।

शनि—(क्रोधावेश से) हाँ, मेरी इच्छा ही सही। मेरी इच्छा के प्रतिकूल कोई कुछ नहीं कर सकता। मैं चाहूँ तो पृथ्वी को दूसरे तारों से टकराकर चूर-चूर कर दूँ, सूर्य से आग बरसाकर सारी पृथ्वी जला दूँ। श्रीवत्स मुझे छोटा कहे ! यह मेरे लिए असह्य है। [सक्रोध प्रस्थान

नारद—तो दिखा लो क्रोध, अंत में नीचा तुम्हें ही देखना पड़ेगा। जितना कष्ट उसके भाग्य में लिखा है उससे रत्ती-भर भी अधिक कष्ट तुम नहीं दे सकोगे।

(गाते हैं)

नर, मत कर इतना अभिमान !

खूब सजाई कंचन काया,

सोना चाँदी द्रव्य कमाया,

[गाते हुए प्रस्थान

(पट-परिवर्तन)

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—श्रीवत्स की कुटिया

समय—दोपहर

(चिंता कुटिया में श्रीवत्स की प्रतीक्षा कर रही हैं। एक ओर तोते का पिंजड़ा लटक रहा है। ठहर-ठहर कर तोते का कुछ शब्द सुनाई देता है।)

चिंता—आज बहुत विलंब हो गया। स्वामी अभी लौटे नहीं। क्या हुआ ? क्या कहीं दूर निकल गये ?

(पिंजड़े में तोता बोलता है)

ईश नाम भज, दुःख जायँ भज।

चिंता—क्यों रे सूए! भूख लगी है ? अच्छा, अभी रुक जाओ। स्वामी फल लेकर लौट रहे होंगे। उनके आने पर तुम्हें भी खाने को मिलेगा। (अपने आपसे) शनि देव! क्या आपको हमारा इस गाँव में भी रहना नहीं भाता ? क्या हमारा राज-पाट छीनकर आपका क्रोध शांत नहीं हुआ ? क्या हमारे मणि-रत्न-भूषण आदि हथियाकर भी आपका हृदय तृप्त नहीं हुआ ? फल-मूल खाकर हम भूख मिटा लेते हैं, यह भी आपको असह्य है। सब फलों में कीड़े डाल दिये हैं। (रुककर) आस-पास कहीं भी अच्छे फल नहीं मिलते। इसीलिए स्वामी फल-मूल बटोरने कहीं दूर निकल गये जान पड़ते हैं। क्या जाने, वहाँ भी शनि देव की माया का प्रसार हो चुका हो। तब तो व्यर्थ ही उन्हें इधर-उधर भटकना पड़ रहा होगा। चलूँ, मैं भी उनके पास पहुँचूँ। [प्रस्थान

(दृश्य-परिवर्तन)

स्थान—फलों के वन का एक स्थल

(श्रीवत्स को ढूँढती हुई चिंता का प्रवेश)

चिंता—अब उन्हें कहाँ देखूँ ? कहाँ ढूँढूँ ? इधर फल-मूल बहुतायत से हैं । यहीं देखती हूँ । (इधर-उधर देखती हैं, एक ओर से श्रीवत्स का शब्द सुनाई देता है) "क्या किया जाय, यहाँ तक लिए चला आया परंतु...

चिंता—यह उनका ही स्वर प्रतीत होता है । (स्वर का अनुसरण करती हुई देखकर) वे रहे स्वामी । देव !

(श्रीवत्स एक ओर खड़े दिखाई देते हैं । चिंता उनके पास पहुँचती हैं ।)

चिंता—आज आपने बहुत विलंब किया ? क्या अभी अच्छे फल-मूल नहीं मिले ?

(श्रीवत्स के पास कई फल पड़े हैं जिनमें कीड़े दिखाई देते हैं । पास में एक हँडिया खाली पड़ी है ।)

श्रीवत्स—नहीं मिले । इधर-उधर भटकता हुआ यहाँ पहुँच गया, परंतु सब फलों में कीड़े पड़ गये हैं । यहाँ फल अच्छे मिला करते थे, इसी आशा से यहाँ आया था, परंतु निराश होना पड़ा । अब तो और कहीं ढूँढने की शक्ति नहीं रही । आज अनशन किये ही पड़े रहेंगे ।

चिंता—नाथ ! अनशन किये कब तक रहेंगे ? एक दिन, दो दिन, तीन दिन, अंत में कब तक ?

श्रीवत्स—यदि शनि देव को हमारे प्राण लेना ही अभीष्ट है, तो हम क्या कर सकते हैं ? यदि वे हमें भूख से पीड़ित कर हमारा खेल देखना चाहते हैं, तो हम क्या कर सकते हैं ?

चिंता—हमारे कारण इन गाँववालों पर भी शनि देव का कोप होगा।

श्रीवत्स—आज हम यदि किसी और स्थान को चले जायँ तो अच्छा है।

चिंता—हाँ, मेरी भी यही इच्छा है। चलिए कुटिया को लौट चलें। (होठों पर जीभ फेरती है) प्यास लगी है। जल पीकर चलती हूँ।

श्रीवत्स—उधर देखो, वहाँ जल है। (एक ओर संकेत करते हैं।)

चिंता—अच्छा।

चिंता—(जलाशय के पास पहुँचकर) यह जल तो बहुत गँदला हो रहा है।

श्रीवत्स—दूर से जल ऐसा ही दिखाई दिया करता है। अंजलि भरकर कर देखो, जल अच्छा दिखाई देगा।

(श्रीवत्स एक पेड़ से पीठ लगाकर बैठ जाते हैं।)

चिंता—अच्छा, देखती हूँ।

(चिंता अंजलि भरकर जल देखती हैं, जल गँदला दिखाई देता है।)

चिंता—यह देखिए, (अंजलि भरकर दिखाती हैं) यह जल तो पीने योग्य नहीं। (अंजलि का जल छोड़ देती हैं।)

श्रीवत्स—मैंने पहले यहाँ कई बार जल पीया है, जल अच्छा था। आज शनि देव ने यहाँ भी अपनी लीला दिखाई है। ओह! मेरे कारण तुम्हें बिना अन्न और बिना जल के रहना पड़ेगा। हाय! मेरा हृदय विदीर्ण क्यों नहीं हो जाता? क्या इंद्र-वज्र...(मूर्च्छित-से हो जाते हैं।)

चिंता—(शोकाकुल होकर) हाय! मेरे दुःख से इन्हें इतना संताप हुआ। (श्रीवत्स मूर्च्छित हो जाते हैं) हाय! धिक्कार है मुझे! मैंने तो सोचा था कि वन-कंदराओं में रहकर इनके सुख का साधन बनूँगी, पर विपरीत क्यों हुआ? (श्रीवत्स को मूर्च्छित देखकर) अरे! मूर्च्छित हो गये! अच्छा, इन्हें पहले सचेत करूँ। (आँचल से हवा करने लगती है) स्वच्छ जल भी नहीं कि इनके मुँह में कुछ जल डाल कर इन्हें शीघ्र सचेत कर सकूँ। (सोचकर, प्रकट) अच्छा, इसी जल को अपने आँचल से छानकर देखती हूँ। जल किसमें लूँ? (सोचकर, प्रकट) हाँ, वहाँ फलों के पास एक हँडिया पड़ी है। वही उठा लाती हूँ।

(हँडिया लाने के लिए चिंता जाती है, और हँडिया लेकर लौटते समय ठोकर लग जाने से गिर पड़ती है। हँडिया टूटने का शब्द होता है।)

श्रीवत्स—(शब्द से सचेत होकर) यह वज्रपात किसने किया? क्या इंद्र देव ने मेरी प्रार्थना सुन ली? मेरा हृदय विदीर्ण करने के लिए वज्रास्त्र को आज्ञा दे दी?

(श्रीवत्स इधर-उधर देखते हैं और कुछ दूर पर चिंता को भूमि पर गिरी देखकर व्याकुल हो जाते हैं।)

श्रीवत्स—हैं ! चिंता ऐसे क्यों लेटी हैं ? क्या भूख और प्यास ने व्याकुल कर डाला ? क्या इंद्र-वज्र का पहला प्रहार इन्हीं पर हुआ ? ओह !

(श्रीवत्स पुनः मूर्च्छित हो जाते हैं। चिंता सचेत होकर उठती हैं और हँडिया के दो बड़े-बड़े टुकड़े लेकर श्रीवत्स के पास आती हैं।)

चिंता—अभी तक मूर्च्छा भंग नहीं हुई ? अच्छा, जल लाती हूँ।

(चिंता जल लेने लगती हैं। एक टुकड़े में जल लेती हैं, दूसरे टुकड़े में अपने आँचल से जल छानकर खड़ी होती हैं।)

चिंता—(जल को देखकर) अब जल कुछ अच्छा दिखाई देता है।

(चिंता जल लेकर चलने लगती हैं, एक कौआ उड़ा जाता है, उसकी बीट जल में आ गिरती है।)

चिंता—हा ! जल दूषित हो गया। (ऊपर देखती हैं। कौए को देखकर) हाय, राम। यह भी अपनी बुराई से न टला।

(कौए का " काँव,काँव " का शब्द सुनाई देता है)

चिंता—क्या है ? क्या है ? हाँ, कौए तुम ठीक कहते हो कि क्या है ? तुमने तो कुछ नहीं किया। किसी ने बलात् तुम्हें ऐसा करने को विवश किया है। अच्छा, जाओ। मैं भी और जल लाती हूँ।

(चिंता पहला जल फेंक देती हैं, और दूसरा जल लेकर छानती हैं। अपनी दुर्दशा का विचार करते-करते उनके कुछ आँसू जल में गिर पड़ते हैं।)

चिंता—हाय ! जल में आँसू गिर पड़े ! जल फिर दूषित हो गया ! अच्छा, और जल लेती हूँ ।

(चिंता और जल लेकर चलती हैं और श्रीवत्स के पास साँप को रेंगते देखकर उनके रोंगटे खड़े हो जाते हैं ।)

चिंता—(भयभीत होकर) हाय ! यह क्या होने को है ?

(जल से भरा हुआ पात्र साँप की ओर फेंकती हैं जिससे साँप श्रीवत्स को छोड़कर उनकी ओर झपटता है ।)

चिंता—हाँ, लक्ष्य ठीक बैठा । साँप मेरी ओर आने लगा है । भागूँ ।

(चोट खाकर साँप चिंता की ओर चलता है, आगे-आगे चिंता टेढ़ी तिरछी भागती दिखाई देती हैं ।)

श्रीवत्स—(जल-बिंदुओं से सचेत होकर) चिंता नहीं आई । क्या हुआ ? देखता हूँ । (उठकर देखते हैं) वह कौन भागा जा रहा है ? चिंता ही तो हैं । और साँप ! (भागते हैं) चिंता ! चिंता !!

(पट-परिवर्तन)

छठा दृश्य

स्थान—लकड़हारों का गाँव

समय—तीसरा पहर

(कुछ लकड़हारे बातचीत करते दिखाई देते हैं ।)

पहला—महाराज पर घोर कष्ट है । कल उन्हें अच्छे फल-मूल नहीं मिले । सुना सारा दिन निराहार बिताया है ।

दूसरा—कहाँ इतने बड़े महाराज और कहाँ यह दीन-हीन दशा ! कहाँ सैकड़ों ब्राह्मण और अनाथों को भोजन खिलाकर भोजन करना और कहाँ स्वयं बिना खाये पड़े रहना !

तीसरा—कल जब मैं उनकी कुटिया की ओर से आ रहा था, तब वहाँ महाराज और महारानी दोनों नहीं थे। उनका तोता पिंजड़े में पड़ा भूख से छटपटा रहा था । मैंने जब उसे कुछ खाने को डाला तब उसके जी में जी आया। ऐसे भला कब तक निर्वाह होगा ?

पहला—मैंने कल उन्हें सायंकाल कुटिया में बैठे देखा था । मैं भी उनके पास जाकर बैठ गया । बातचीत से पता लगा कि आज उन लोगों ने कुछ नहीं खाया । परंतु उनकी मुख-मुद्रा बिगड़ी नहीं थी, उनके मुख पर दिव्य ज्योति पहले जैसी ही दिखाई देती थी । भाई ! तुम मानो या न मानो, उन्हें किसी देवी या देवता की सिद्धि अवश्य है ।

दूसरा—हाँ अवश्य उन्हें किसी देवता का इष्ट है। बिना खान-पान किये भी वे ऐसे रहते हैं जैसे राजसी भोजन किये हों।

चौथा—हाँ, ऐसा ही जान पड़ता है। कभी-कभी रात में उनकी कुटिया के पास ज्योति दिखाई दिया करती है। जान पड़ता है कि कोई दिव्य मूर्त्ति उनकी देख रेख करती है।

तीसरा—यही तो मैं कहता हूँ।

पहला—यह भी हो सकता है कि वह दिव्य मूर्त्ति ही उनके पीछे पड़ी हो, उनके सुख में बाधा डालती हो। आप जो उनके मुख पर दिव्य ज्योति की बात करते हैं, वह तो इन राजा-महाराजाओं की स्वाभाविक विभूति है।

दूसरा—यदि हम कुछ खाने-पीने को देते हैं तो महाराज उसे लेते नहीं। फल-मूल में कीड़े पड़ गये हैं। वे अब खाने योग्य नहीं रहे। ऐसी दशा में उनका निर्वाह कैसे होगा ?

तीसरा—यही तो मैं कहता हूँ। अब एक बात है। यदि उन्हें अपने हाथों से परिश्रम करके आजीविका प्राप्त करनी है तो हमारे साथ चंदन की लकड़ी काटा करें; इससे उनका जीवन सुख और शांति से कट जायगा।

पहला—हाँ, ठीक है।

दूसरा—भाई ! मेरे विचार में यह काम महाराज के योग्य नहीं ! उन्होंने ऐसे नीच काम का कभी सपना भी न देखा होगा।

चौथा—तुम ठीक कहते हो, परंतु चंदन की लकड़ी के सिवाय

यहाँ और काम क्या हो सकता है ? जब भाग्य ने उन्हें कुचक्र में डाल दिया है तब इसका उपाय और क्या हो सकता है ?

(श्रीवत्स और चिंता घूमते हुए इधर आ पहुँचते हैं और लकड़हारों को देख कर)

श्रीवत्स—अजी ! आज यहाँ क्या सभा हो रही है ?

तीसरा—हमने अनुमान लगाया था कि आप इधर ही आ रहे हैं। सो आपके स्वागत के लिए यहाँ आ खड़े हुए थे।

(सब हँसते हैं। श्रीवत्स और चिंता भी मुसकराते हैं।)

श्रीवत्स—कहिए, क्या प्रसंग चल रहा है ?

दूसरा—महाराज ! आपकी ही बात हो रही थी, आप स्वयं आ पधारे। आपकी आयु लंबी है।

श्रीवत्स—मैं भी कुटिया में बैठा आपकी शिष्टता का स्मरण कर रहा था। परमात्मा आप को सदैव प्रसन्न रक्खे, आपका कल्याण हो। आपने अनेक उपकारों द्वारा हमें अनुगृहीत किया है।

तीसरा—महाराज ! आप तो हमें कुछ सेवा करने नहीं देते। हमने कुछ भी नहीं किया।

श्रीवत्स—भाइयो ! आज मुझे आपसे एक निवेदन करना है।

चौथा—आज्ञा कीजिए।

श्रीवत्स—आप अब मुझे यहाँ से और कहीं जाने की अनुमति दें।

सब—न, यह न होगा।

श्रीवत्स—मैं पर-जीविका से जीवन-निर्वाह नहीं करना चाहता। फलों में अब कीड़े पड़ गये हैं, संभव है शनिदेव का आप पर भी क्रोध हो। अतएव मेरा यहाँ रहना ठीक नहीं है!

दूसरा—फल मूल नहीं मिलते तो न सही, भाड़ में जायँ फल-मूल। आपके भोजन के लिए भला किसी वस्तु की कमी है?

श्रीवत्स—फल-मूल के अतिरिक्त दूसरे पदार्थ न खाने का भी विशेष कारण है। हम फल-मूल खाते हैं, तो शनि देव उनमें भी कीड़े डाल देते हैं। यदि अन्य पदार्थ खायेंगे तो आप भी दुःख-ग्रस्त होने से न बचेंगे।

दूसरा—आप तो हमारे राजा हैं, आप हमारे पिता हैं। भोजन तो आपको घर बैठे ही पहुँच सकता है। आप हठ करते हैं, हमारी बात नहीं मानते। यदि आप शनि से इस प्रकार डर कर रहेंगे तो आपकी जीवन-रक्षा कैसे होगी? नहीं तो आप आत्महत्या के पाप के भागी होंगे। सो आप हमारी प्रार्थना मानें।

तीसरा—आप स्वयं किसी पदार्थ के झंझट में पड़ें ही नहीं।

श्रीवत्स—हाँ, आप का कहना ठीक जँचता है, परंतु मैं वीर पुरुष हूँ। मेरे भी आपके समान दो भुजाएँ हैं और दोनों भुजाओं में बल है। मैं स्वयं धनार्जन कर सकता हूँ। मैं आप पर भार-स्वरूप क्यों बनूँ?

पहला—यदि आपका ऐसा आग्रह है तो हम विवश हैं। परंतु हमारी एक प्रार्थना है। आप कृपा करके यहीं अपने पुरुषार्थ द्वारा आजीविका प्राप्त कर लें। हम इससे प्रसन्न होंगे।

तीसरा—जब हम इन्हें अपना राजा मानते हैं तब इन्हें हमसे छठा भाग राजकीय कर लेने में कुछ आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

श्रीवत्स—भाइयो ! मैं अब राजा नहीं बनता। एक स्थान पर राजा बना था, प्रजा का नाश करा दिया। अब मैं फिर राजा क्यों कर बनूँ ? अब आप जैसे सज्जनों की मित्रता पाकर ही मैं अति प्रसन्न हूँ। मेरा यही अनुरोध है कि मुझे स्वयं आजीविका प्राप्त करने दो।

चौथा—(दो-एक लकड़हारों को देखकर) यदि महाराज की यही इच्छा है तो हम क्या कर सकते हैं ? (श्रीवत्स से) आपकी इच्छा। यदि अप्रिय न हो तो आप हमारे साथ चंदन की लकड़ी काटा करें। चंदन की लकड़ी महँगी बिकती है। थोड़े ही परिश्रम से काम बन जाता है।

श्रीवत्स—(सोचकर) हाँ, यही ठीक है। कल से मुझे साथ ले चला करना।

चिंता—(एक ओर धीरे से) हाय ! महाराज अब लकड़हारे का काम करेंगे। यह असह्य है। माता लक्ष्मी ! यह क्या हो रहा है ? (आँखों में आँसू भर आते हैं)

श्रीवत्स—(चिंता की आँखों में आँसू देखकर) तुम कुछ सोच न करो (मनुष्य कर्म-रेखा के सामने एक कठपुतली है। जिधर कर्म खींच ले जाता है, मनुष्य उधर हाथ बाँधे चल पड़ता है।)

चिंता—(आँसू पोंछकर) तो मैं भी आपके साथ जाया करूँगी। आपको इस कठिन काम में सहायता दिया करूँगी।

श्रीवत्स—अच्छा, देखा जायगा। (लकड़हारों से) भाइयो ! कल मुझे साथ अवश्य लेते जाना। (कुछ सोचकर) परंतु इस आजीविका में आपके साथ ही मेरा संघर्ष होगा। मैं नहीं चाहता कि मैं आपके सुख-मार्ग में किसी प्रकार से बाधा डालूँ।

तीसरा—महाराज ! इसमें संघर्ष कैसा ? चंदन की लकड़ी तो जितनी कट जाय उतनी बिक जाती है। आप भी बेच लेंगे, हम भी बेच लेंगे।

चौथा—महाराज ! और भी दस आदमी काम करें तो हमारे लिए कुछ भी बाधा न होगी। आप ऐसा विचार मन में क्यों ला रहे हैं ?

श्रीवत्स—अच्छा, जो तुम्हारी इच्छा...

(एक ओर शेर की गर्जना और हाथी की चिंघाड़ सुनाई देती है। सब उस ओर देखने लगते हैं।)

पहला—वह देखो, हाथी भागता हुआ इधर आता दिखाई देता है, और शेर उसका पीछा कर रहा है।

दूसरा—(डरकर, श्रीवत्स का हाथ पकड़कर) आइए एक ओर छिप जायँ।

[सब का प्रस्थान

(पट-परिवर्तन)

सातवाँ दृश्य

स्थान—गाँव के निकटवर्ती एक वाटिका

समय—पहला पहर

(विचार-लीन चिंता धीरे-धीरे आती दिखाई देती हैं। एक हाथ में गीले वस्त्र हैं जिनसे प्रतीत होता है कि चिंता स्नान करके आई हैं। कुछ दूर झाड़ी पर गीले वस्त्र फैलाती हुई कुछ कहने लगती हैं।)

चिंता—दयालु परमात्मा का भंडार सदा खुला है। उनका दान अनंत है। भक्त-जन उन्हें दयासागर कहकर पुकारते हैं। परंतु परमात्मा को भक्त या अभक्त की चिंता नहीं, वे सब जीवों का सम-भाव से पालन करते हैं। उनके वशवर्ती सूर्य, चंद्र, वायु, जल आदि उच्च-नीच, सज्जन-दुर्जन, भक्त-अभक्त, सब को एक दृष्टि से देखते हैं। कोई भाग्यवान् है या भाग्यहीन, वे इसका विचार नहीं करते। (कपड़े फैलाकर दो चार पग चलकर) परमात्मा सब को कुछ न कुछ खाने को देते हैं। मनुष्य उन सर्वशक्तिमान् प्रभु के प्रति कृतज्ञ रहे या कृतघ्न, यह बात मनुष्य की इच्छा पर निर्भर है। (रुककर) अच्छा, मैं फूल चुनकर अब ईश-वंदना से निपट लूँ।

(चिंता इधर-उधर फूल चुनने लगती हैं और साथ-साथ गाती जाती हैं। झाड़ियों के हिलने से फूलों का रस पी रहे भौंरे मँडराने लगते हैं और तितलियाँ उड़ने लगती हैं।)

इन निराशा के घनों में
　　एक आशा की किरण है।
वेदना के विपिन में
　　यह शांति का सुंदर सुमन है।
दुःख की निशि के क्षितिज पर
　　उग रहा उज्ज्वल अरुण है।
इस शिशिर के बाद निश्चय
　　आ रहा मधु-ऋतु तरुण है।

(दो स्त्रियों का प्रवेश)

पहली—आज देव-आराधना के लिए देर हो गई। (गीत सुनकर) यह गा कौन रहा है ?

दूसरी—बहिन चिंता का-सा स्वर है। (इधर-उधर देखकर) वह रही बहिन चिंता !

(दोनों उधर चलने लगती हैं।)

पहली—(सहसा रुककर) हमें देखकर बहिन चिंता गाना बंद कर देगी। ज़रा यहीं ठहर कर गाने का आनंद लें।

दूसरी—अरे गाना तो बंद हो गया ! देखो, अब वह क्या कर रही है।

(चिंता सूर्य-वंदना करती दिखाई देती है। दोनों स्त्रियाँ चिंता को सूर्य-वंदना करते देखकर चकित होती हैं।)

चिंता—हे सूर्य देव ! आप सारे विश्व में जीवन का संचार करते हैं। आपके दर्शन से प्रत्येक जीव में स्फूर्ति का उद्घाटन

होता है, नित्य-कर्म का स्मरण होता है, और हे देव! मैं क्या-क्या गिनाऊँ? आप ही अँधेरे में उजाला करते हैं। आप ही प्रत्येक ऋतु के मूल कारण हैं। आपके प्रचंड प्रकाश से पाप-पुंज परास्त होकर नष्ट हो जाता है। आप ही कर्त्तव्य-पथ पर आरूढ़ रहने की शक्ति के प्रदाता हैं। हे देव! हमें बल दो, हमें साहस दो कि हम अपने न्याय-पथ पर दृढ़ रहें।

(चिंता सूर्य को जल देती है। दोनों स्त्रियाँ चिंता के पास आकर विस्मित-सी खड़ी हो जाती हैं। उचित शिष्टाचार के पश्चात)

एक—बहिन चिंता! तुम सूर्य-वंदना क्यों करती हो? सूर्य के पुत्र के कारण ही तो तुम्हारी यह दुर्दशा हो रही है।

दूसरी—हाँ, ठीक बात है। सूर्य की वंदना क्यों की जाय?

चिंता—बहिनो! ऐसा न कहो। जो वंदनीय है, वह तिरस्करणीय नहीं हो सकता। आदरणीय का आदर करना ही न्याय है। हम तो शनि देव का भी निरादर नहीं करते। वे अकारण ही बुरा मान गये हैं! उनकी इच्छा। उनके रोष के कारण मैं उन पर अथवा उनके पिता सूर्य देव पर रोष नहीं कर सकती। वे तो समस्त विश्व द्वारा वंदनीय हैं।

पहली—तुम्हारे विचार तो बड़े ऊँचे हैं।

दूसरी—धन्य हो तुम।

(सहसा किसी के गाने का शब्द सुनाई देता है)

रे नर, साहस को मत छोड़।

पथ के काँटे खून बहा लें,

सिर के वज्र टूक कर डालें,

(एक ओर से महर्षि नारद गाते हुए आते दिखाई देते हैं।)

चिंता—बहिनो ! महर्षि नारद आ रहे हैं। मंदिर से इनके सत्कार के लिए अर्घ्य ले आओ।

(दोनों स्त्रियाँ अर्घ्य लेने एक ओर बढ़ती हैं। नारद गाते हुए चिंता के पास पहुँच जाते हैं। चिंता उन्हें प्रणाम करती हैं और महर्षि नारद आशीर्वाद देते हैं।)

नारद—पुत्री ! "धन्य हो तुम !" यही देव और मर्त्य दोनों तुम्हारे विषय में कहते हैं। तुम्हें कष्ट में पड़े देखकर शनि की माता छाया का हृदय द्रवीभूत हो उठा है। उनके अनुरोध से सूर्य देव ने तुम पर प्रसन्नता प्रकट करते हुए तुम्हें एक वर प्रदान किया है। उन्होंने कहा है कि "जब कोई घोर संकट उपस्थित हो, मुझे स्मरण करना, मैं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूँगा।"

चिंता—(सहर्ष) जब शनि देव के माता-पिता मेरे साथ सहानुभूति रखते हैं तब यह दुःख-सागर शीघ्र ही पार हो जायगा। देवर्षि ! आप हमारे लिए...

नारद—तुम्हें कठिनाई में पड़े देखकर मैं लज्जा अनुभव करता हूँ। मेरे कारण ही इंद्र ने ईर्षा-वश तुम्हारी परीक्षा लेनी चाही।

चिंता—महर्षि ! आप किसी बात की शंका न करें। आपने तो इंद्र के सम्मुख हमारी प्रशंसा ही की थी, न कि निंदा। आगे जो हमारे भाग्य में लिखा था, सो हुआ।

नारद—हाँ, यह समझो कि मेरे द्वारा की गई आपकी प्रशंसा यथार्थ सिद्ध हो जायगी। उस पर देव-समुदाय की मुद्रा लग जायगी।

चिंता—(मंदिर की ओर देखकर, धीरे से) उन्होंने विलंब किया। (प्रकट) आइए, मंदिर में पधारिए, वहाँ तनिक विश्राम कीजिएगा।

नारद—पुत्री ! नारद को विश्राम कहाँ ? अब चलता हूँ। तुम धीरज रखो।

चिंता—आपका उचित सत्कार भी न कर सकी।

(नारद आशीर्वाद देने के लिए हाथ उठाते हैं, चिंता शीश झुकाती हैं)

[नारद का ' रे नर, साहस को मत छोड़ ' गाते हुए प्रस्थान]

(पट-परिवर्तन)

आठवाँ दृश्य

स्थान—चंदन वन

समय—एक पहर के पश्चात्

(श्रीवत्स वृक्ष पर खड़े लकड़ी काट रहे हैं। नीचे चिंता खड़ी हैं। दूर से दूसरे लकड़हारों का लकड़ी काटने का शब्द सुनाई देता है।)

चिंता—(श्रीवत्स की ओर देखकर) यह शाखा पतली है, इस पर न चढ़िए।

श्रीवत्स—(वह शाखा छोड़ते हुए) उस शाखा पर चढ़ता हूँ।

(एक मोटी शाखा की ओर संकेत करते हैं)

चिंता—हाँ, वह शाखा ठीक है।

(श्रीवत्स उस शाखा पर चढ़ने लगते हैं। एक टाँग वक्ष पर रखते हैं, और दूसरी टाँग पहली शाखा से उठाते ही हैं कि वहाँ एक डरावना साँप दिखाई देता है। श्रीवत्स एक टाँग के बल ही खड़े दिखाई देते हैं।)

चिंता—(साँप को देखकर व्याकुलतापूर्वक) शीघ्र उतर आइए।

(श्रीवत्स उतरने लगते हैं। दूसरा पैर किसी पतली टहनी पर पड़ने से फिसल जाते हैं और गिरते-गिरते अपनी बाँह एक स्थान पर अड़ाकर खड़े हो जाते हैं। चिंता यह दृश्य देखकर काँपने लगती हैं।)

चिंता—हाय ! क्या करूँ ? क्रुद्ध शनिदेव न मालूम अभी क्या करनेवाले हैं ! माता लक्ष्मी ! रक्षा करो, रक्षा करो ! (मूर्च्छित होकर गिर पड़ती हैं।)

श्रीवत्स—(चिंता को मूर्च्छित होकर गिरती देखकर) अब शीघ्र कैसे उतरूँ ?

(इधर-उधर दूसरी शाखाओं की ओर देखते हैं और एक स्थान पर पैर रखकर नीचे उतरने लगते हैं कि शीघ्रता के कारण गिर पड़ते हैं और अचेत हो जाते हैं।)

(नेपथ्य में)

"यह धमाके का शब्द कैसे हुआ ? कोई पेड़ पर से गिरा दीखता है ! (देखता हूँ) महाराज जान पड़ते हैं। आओ, चलें।"

(दो लकड़हारों का प्रवेश)

एक—विचित्र दृश्य है। एक ओर महारानी गिरी पड़ी हैं, दूसरी ओर महाराज।

दूसरा—अरे ! महारानी के पास साँप कुंडली मारे बैठा है। कहीं इस दुष्ट ने देवी का शरीर......हाय, कहीं......

पहला—नहीं, भय की कुछ बात नहीं। तुम महाराज को देखो, मैं महारानी को सचेत करता हूँ।

(पहला लकड़हारा चिंता की ओर बढ़ता है, दूसरा श्रीवत्स की ओर।)

पहला—(चिंता के पास पहुँचकर और उन्हें देखकर) धन्य हो, नाग देव ! तुमने महारानी पर कृपा ही रखी।

(साँप शब्द सुनकर चौंकता है और एक ओर भाग जाता है।)

दूसरा—(श्रीवत्स को देखकर) पेड़ पर से गिर पड़े दीखते हैं। कुशल हुई, कहीं चोट नहीं आई। न जाने कितनी ऊँचाई से गिरे हैं। यह भी अच्छा हुआ कि नीचे घनी लंबी-लंबी घास थी।

(लकड़हारा आँचल से हवा करता है, कुछ देर में श्रीवत्स सचेत हो जाते हैं।)

श्रीवत्स—(व्याकुलता से) चिंता ! चिंता !! तुम कहाँ हो ? (लकड़हारे को देखकर) भाई ! चिंता कैसी है ?

लकड़हारा—महाराज ! वह अच्छी हैं।

(चिंता सचेत होकर श्रीवत्स को पुकारती है)

चिंता—स्वामी ! कहाँ हो ?

(श्रीवत्स चिंता का शब्द सुनकर उठ खड़े होते हैं और उनके पास जाने लगते हैं।)

पहला—महारानी ! महाराज सकुशल हैं। आप शांत होइए। (श्रीवत्स को पास आते देखकर) देखिए, महाराज इधर आ रहे हैं।

(श्रीवत्स और लकड़हारा चिंता के पास पहुँचते हैं, चिंता उठकर बैठ जाती है।)

चिंता—(श्रीवत्स को देखकर) कपड़ों पर हरा रंग कैसे लग गया ?

श्रीवत्स—(मुसकराते हुए) जैसे लगा करता है।

पहला—(मुसकराकर) महाराज ने तो छलाँग लगाई थी।

दूसरा—महाराज तो देख रहे थे कि यदि कोई पेड़ से गिर पड़े तो कैसे बचाव हो सकता है।

चिंता—(विस्मयपूर्वक) तो क्या महाराज पेड़ से गिरे थे?

(गाने का शब्द सुनाई देता है, सब उधर देखने लगते हैं।)

रे नर, साहस को मत छोड़।

पथ के काँटे खून बहा लें,
सिर के वज्र टूक कर डालें,

(नारद आते दिखाई देते हैं। सब हाथ जोड़कर शीश झुकाते हैं। नारद गाते हुए पास पहुँचते हैं और आशीर्वाद देते हैं।)

नारद—महाराज! देवता लोग आपके अथाह धैर्य पर मुग्ध हैं।

श्रीवत्स—महर्षि! आप मनुष्य की तुच्छ शक्ति से भली प्रकार परिचित हैं। हम जो कुछ भी कर पाये हैं, वह सब दैवी शक्ति का ही परिणाम है। मनुष्य तो निश्शक्त है, वह...

(लकड़हारे सब विस्मित हुए मौन खड़े रहते हैं और एक दूसरे की ओर देखते हैं।)

नारद—यह तो आपकी नम्रता है। (परन्तु मनुष्य की शक्ति किसी प्रकार कम नहीं है। मानवी शक्ति से भयभीत होकर इंद्र-देव का भी आसन डगमगाने लगता है। मनुष्यों की घोर तपस्या से संतुष्ट होने के बदले वे संतप्त होते हैं और उनकी तपस्या को विफल करने के लिए सैकड़ों छल-कपट करते हैं।) नारायण!

नारायण !! जहाँ इंद्रदेव के कान पर जूँ तक न रेंगनी चाहिए, वहाँ उसके बदले उनके हृदय पर साँप लोटने लगते हैं। नारा-यण ! नारायण !!

पहला—देवर्षि ! तब तो मनुष्य देवता के तुल्य हुआ ! अद्भुत है यह विश्व-माया !

नारद—और क्या ? अच्छा, चलता हूँ। सुखी रहो।

(सब नतमस्तक होते हैं)

[नारद का "रे नर, साहस को मत छोड़" गाते हुए प्रस्थान

(पट-परिवर्तन)

नवाँ दृश्य

स्थान—लकड़हारों के गाँव के पास नदी

समय—दोपहर के बाद

(शनिदेव का प्रवेश)

शनि—अहहह ! कैसा मजा चखाया ! परन्तु नहीं, यह कुछ नहीं, अभी मेरा क्रोध शांत नहीं हुआ। चिंता श्रीवत्स को धीरज बँधाये रहती है, उसे दुःख अनुभव नहीं होने देती। इन्हें पृथक्-पृथक् करना होगा। तब इनकी गति-मति देखकर आनंद आयेगा। तब इन्हें अनुभव होगा कि कौन शक्तिशाली है। उस चपला अबला लक्ष्मी के सामने मैं सारहीन, शक्तिहीन ! आह ! सब ठीक कर दूँगा। आप ही ये कहने लगेंगे कि शनिदेव ! कृपा कीजिए, आप ही बड़े हैं। अब कुछ युक्ति लड़ाता हूँ। (कुछ सोचकर) हाँ, यही ठीक है, यही ठीक है। हा हा हा हा हा !

[हँसते हुए धीरे धीरे अंतर्धान

(किसी का गीत सुनाई देता है)

ले रही उन्मत्त सरिता में हिलोरें आज नौका।

हैं घिरी नभ में घटाएँ, बिजलियाँ जिनमें कड़कतीं।
सुन गरज छाती हमारी आज भय से है धड़कती !
आ रही आँधी भयंकर है प्रलय निशा चिंहुँसती।

ले चला है वायु का किस ओर हमको आज झोंका !
ले रही उन्मत्त सरिता में हिलोरें आज नौका !

(कुछ बालकों का प्रवेश)

पहला—यह गीत कौन गा रहा है ? कोई दिखाई नहीं देता।

दूसरा—दिखाई क्यों नहीं देता ? वह देखो, वह माँझी नाव में बैठा गा रहा है।

पहला—(नाव की ओर देखकर) अरे ! नाव तो इधर ही आ रही है।

तीसरा—अहा ! बड़ा आनंद रहेगा।

चौथा—नाव पर कोई बड़ा सेठ बैठा दिखाई देता है।

पाँचवाँ—कोई बताये, भला यह नाव कहाँ से आई है ?

तीसरा—नदी के बीच में से आई है।

(सब हँसते हैं तिलक लगाये एक ब्राह्मण का प्रवेश)

चौथा—(ब्राह्मण को देखकर) वह ब्राह्मण देवता आ रहे हैं। उनसे पूछो कि नाव कहाँ से आ रही है।

दूसरा—अरे ! ये तो ज्योतिषीजी हैं, हमारे घर के सामने रहते हैं। चलो, उनसे पूछें।

(बालक ज्योतिषी जी की ओर बढ़ते हैं, माँझियों का शब्द सुनाई देता है।)

"लगा दो जोर भैया, लगा दो जोर भैया !"

बालक—(चौंककर) अरे ! यह क्या हुआ ?

पहला—नाव रेत में फँस गई।

दूसरा—यहाँ गहरा पानी है, फँस कैसे गई ?

(माँझियों का शब्द फिर सुनाई देता है।)

" लगा दो ज़ोर भैया, लगा दो ज़ोर भैया ! "

(सब बालक और ब्राह्मण नाव की ओर जाने लगते हैं।)

चौथा—नाव किसी चट्टान से अटक गई दिखाई देती है।

(नाव से सब लोग तट पर आ जाते हैं। केवल माँझी लोग रह जाते हैं।)

सेठ – क्या करें ? नाव ज़रा भी टस से मस नहीं होती। जल्दी पहुँचना है। रेत कहीं भी नहीं, क्या बात है ?

सेवक—महाराज ! यहाँ के रहनेवालों से पूछना चाहिए। उन्हें पता होगा कि यहाँ नदी कैसी है ?

सेठ –(ब्राह्मण की ओर देखकर) महाराज ! मेरी नाव चलती नहीं। क्या आप इसका कारण बता सकते हैं !

ब्राह्मण—कारण, सेठ जी ! हम तो ज्योतिषी हैं। हमारा तो काम ही संसार के प्रत्येक झंझट को बताना है। मेरे लिए कौन सी बात गुप्त है ?

सेठ—(सहर्ष) अच्छा, आप ज्योतिषी हैं ! मेरे अहोभाग्य ! कृपया शीघ्र बताइए कि क्या विघ्न-बाधा है ?

ब्राह्मण – विघ्न-बाधा ? देखिए, मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या (अँगुलियों पर कुछ गिनता है) मेरी विद्या तो शनि की कोप-दृष्टि बताती है।

सेठ—शनि की कोप-दृष्टि ! हाय विधाता ! शनि की......

ब्राह्मण—व्याकुल मत होइये। अभी इसका उपाय बताता हूँ।

सेठ—(सँभल कर) हाँ, जल्दी बताइये, जल्दी।

ब्राह्मण—(सोचकर) सती साध्वी स्त्री के स्पर्श से यह नाव शीघ्र चल पड़ेगी।

सेठ—अच्छा, तो ऐसा ही करता हूँ। यह लीजिये।

(एक मुद्रा ब्राह्मण को देता है)

सेठ—(बालकों से) अरे बालको! मिठाई खाओगे?

[ब्राह्मण का प्रस्थान

बालक—(प्रसन्नता से उछलकर) हाँ, खायँगे, हाँ, खायँगे।

पहला—पहले मुझे दो।

चौथा—पहले मैं खाऊँगा।

सेठ—तुम सब को मिठाई मिलेगी। अपने-अपने घर से भी सब किसी को बुला लाओ। उन्हें भी मिठाई मिलेगी।

दो बालक—हम अभी बुला लाते हैं। (भागते हैं)

सेठ—(अपने सेवक से) तुम भी इन बालकों के साथ जाओ। गाँव की स्त्रियों को अपने साथ लिवा लाओ। उनसे कहना कि जिसके छूने से नाव चलेगी, उसे बहुत सा द्रव्य भेंट में मिलेगा।

सेवक—आओ रे बालको!

[शेष बालकों के साथ प्रस्थान

सेठ—स्त्री के छूने से नाव चल पड़ेगी? स्त्री के स्पर्श में इतनी शक्ति! जहाँ दसों नाविकों के भरसक यत्न से नाव हिली तक नहीं, वहाँ एक अबला के स्पर्श-मात्र से नाव चल पड़ेगी! कुछ समझ में नहीं आता। और शनि क्यों कुपित हुए? होगा कुछ। मैं भी चलता हूँ। [प्रस्थान

(शनि का प्रवेश)

शनि—आ हा हा हा हा !! अब नया ही खेल खेला जायगा। अब श्रीवत्स और लक्ष्मी को छठी का दूध स्मरण हो आयेगा। छल-प्रपंच में कोई शनि को पा सकता है ? लक्ष्मी क्या, स्वयं विष्णु भगवान् भी श्रीवत्स की मुझ से रक्षा नहीं कर सकते। चलो, यह भी खेल खेलें।

[प्रस्थान

(पट-परिवर्तन)

दसवाँ दृश्य

स्थान—गाँव के बाहर नदी-तट की ओर

समय—दोपहर के बाद

(कुछ बालकों का गाँव की स्त्रियों के साथ प्रवेश। बालक कूदते-फाँदते आगे-आगे जा रहे हैं, पीछे स्त्रियाँ बातचीत करती जा रही हैं।)

एक—नाव चलाने का यह विचित्र उपाय है !

दूसरी—भगवान् की लीला भगवान् ही जानें।

तीसरी—ज्योतिषी जी ने कुछ सोच-विचार कर ही उपाय बताया होगा।

चौथी—ज्योतिषी जी बड़े चतुर हैं।

पाँचवीं—इनका वचन आज तक झूठा नहीं हुआ। हमारे जब भूषण खो गये थे तब इन्होंने कैसे बता दिया था कि नदी-तट पर शिला के नीचे भूषण रखे हैं और भूषण हमें वहीं मिल गये थे !

दूसरी—हमारे साथ चिंता नहीं आई। बेचारी गाँव में अकेली बैठी है।

तीसरी—उसकी अनोखी बात है। हमारे घरों से भी सब बाहर गये थे, हम तो सब चली आईं।

पाँचवीं—भला जरा-जरा सी बात के लिए पति से क्या पूछना ?

चौथी—अरी ! ऐसे मत कह। वह स्त्री साधारण स्त्री नहीं। उसकी बात हम मूढ़ क्या समझें ?

(स्त्रियों और बालकों को आते देखकर सेठ आगे बढ़ता है।)

बालक—लाओ मिठाई, लाओ मिठाई।

सेठ—(एक सेवक की ओर संकेत करके) जाओ, वहाँ से मिठाई ले लो।

(हँसते-कूदते बालक मिठाई लेने चले जाते हैं।)

सेठ—(स्त्रियों से) माताओं ! मेरे ऊपर संकट आ पड़ा है, सहायता करो।

सेवक—(प्रवेश करके) स्वामी ! गाँव की सब स्त्रियाँ यहाँ आ गई हैं, केवल एक स्त्री नहीं आई।

सेठ—एक स्त्री नहीं आई। यह क्यों ?

सेवक—प्रभो ! वह कहती है कि मेरा स्वामी बाहर गया है। उसके घर लौट आने पर आज्ञा लेकर मैं कहीं जा सकती हूँ।

सेठ—(सोचकर) हाँ, सब का ही बुलाना ठीक है। संभव है, उसी से हमारा काम निकले। उसे अवश्य बुलाना चाहिए।

एक स्त्री—वह ऐसे नहीं आयेगी।

सेठ—तो मैं ही जाकर प्रार्थना करता हूँ। (सेवक से) अरे ! इन सब को नदी-तट पर ले जाओ। सब को मिठाई दिलवा दो।

सेवक—जो आज्ञा। [सब का प्रस्थान

सेठ—अच्छा, अब मैं ही जाकर उससे प्रार्थना करता हूँ।

(सेठ कुछ सोचता हुआ गाँव की ओर बढ़ता है)

सेठ—वह आई क्यों नहीं ? लोभी होगी। पहले ही कुछ भेंट चाहती होगी। हाँ, ठीक है। गुण होने पर गुणवान् अपना मूल्य बढ़ा लेता है, और फिर स्त्री-जाति ! स्त्री तो लोभ का घर है। तभी तो परमात्मा ने और वस्तुओं का अधिष्ठाता देवताओं को बनाया, परंतु धन का लक्ष्मी को। लक्ष्मी विष्णु की स्त्री जो रही ! अतएव लक्ष्मी ने विष्णु से धन पर ही अधिकार माँगा होगा। अस्तु, कुछ बात नहीं, जो माँगेगी दे दूँगा। [प्रस्थान

(दृश्य परिवर्तन)

(गाँव में श्रीवत्स की कुटिया। चिंता कुटिया के बाहर बैठी है, तोता पिंजड़े में बैठा टें-टें कर रहा है। चिंता तोते को संबोधन करके गा रही है।)

तोते, क्या सुख है बंधन में ?

कहाँ गई वह तरु की डाली,
तरु की डाली फूलों वाली,
वह वन-उपवन की हरियाली,

हुये प्राण आज क्रंदन में !
तोते, क्या सुख है बंधन में ?

विहगों का उड़-उड़कर आना
आकर सुंदर गीत सुनाना,
बिछुड़े घर की याद दिलाना,

भर देता व्याकुलता मन में !
तोते, क्या सुख है बंधन में ?

(सेठ का प्रवेश)

सेठ—(झोंपड़ी की ओर देखकर) वह रही वह स्त्री ! मुख पर कैसी अद्भुत ज्योति जगमगा रही है ! (पास पहुँचकर सविनय) देवी ! मेरी नाव रेत में फँस गई है । किसी ज्योतिषी ने बताया है कि सती-साध्वी स्त्री के छूने से नाव चल पड़ेगी । आप कृपा करके मेरे साथ नदी-तट पर चलें ।

चिंता—सेठ ! मेरे पति देव अभी लौटे नहीं । उनसे बिना पूछे मैं कहीं नहीं जा सकती ।

सेठ—देवी ! संकट के समय दुखिया की सहायता करनी चाहिए । मैं आपकी शरण आया हूँ, मेरी प्रार्थना स्वीकार कीजिये ।

चिंता—अभी रुक जाओ । मेरे स्वामी के लौटने में थोड़ा ही विलंब है ।

सेठ—देवी ! उनके लौटने तक तो आप यहाँ वापस भी आ सकती हैं । सामने ही तो नदी-तट है । क्या माता अपनी संतान पर दुःख आया देखकर पति के आने तक उसका निवारण नहीं करती ? माता ! कृपा कीजिए । जीवन भर आपके उपकार का स्मरण रखूँगा । आपको बहुमूल्य भेंट अर्पण करूँगा ।

चिंता—(कुछ चिढ़कर) भेंट की मुझे कोई आवश्यकता नहीं । लोभ किसी और को दिखाना ।

सेठ—(खिसियाकर) देवी ! लोभ की बात नहीं । अस्तु, जाने दो । ज़रा जल्दी कृपा कर दो । विलंब होने से मुझे हानि होगी ।

राजा रुष्ट होंगे। (हाथ जोड़ता है) क्या एक असहाय व्यक्ति एक सती-साध्वी स्त्री की सहायता नहीं पा सकता ? क्या परोपकार करने में भी पति की आज्ञा आवश्यक है ? आर्य धर्म में परोपकार का बड़ा महत्त्व है। मुझे निश्चय है कि तुम्हारे पति को तुम्हारे इस धर्म-कार्य से बड़ा संतोष होगा। मैं समझता हूँ कि तुम्हारी अंतरात्मा भी यही कहती होगी। मेरी रक्षा करो।

चिंता—(अनमनी-सी होकर) अच्छा, चलो। बड़ा हठ करते हो।

सेठ—(सहर्ष) आइये, चलिये।

[दोनों नदी-तट की ओर जाते हैं

(दृश्य-परिवर्तन)

(चिंता और सेठ नदी-तट पर खड़े दिखाई देते हैं)

चिंता—हे भगवान् मेरी लाज तुम्हारे हाथ है। सेठ को विश्वास है कि उसकी नाव मेरे छूने से चल पड़ेगी। यदि ऐसा न हुआ तो मेरे ऊपर भारी लांछन लगेगा। दुःख-संकट अनेक सहन कर लूँगी परंतु असती का लांछन असह्य है। अवसर पर मेरे पातिव्रत्य धर्म की परीक्षा है। प्रभो ! मुझे कलंक से बचाना।

(सेठ पानी में बढ़ने लगता है)

चिंता—(नाव की ओर पानी में बढ़कर) नाव को कैसे चलाऊँ ?

सेठ—ज़रा पानी में और बढ़ आइये और नाव को छू दीजिये।

(चिंता आगे बढ़कर नाव छू देती है। नाव सरक जाती है। सेठ नाव पर चढ़ जाता है, माँझी नाव आगे बढ़ाने लगते हैं। सेठ सहसा किसी विचार से चिंता को नाव पर खींच लेता है। चिंता चिल्लाने लगती है। नाव तेज़ी से चलने लगती है।)

चिंता—नर-पिशाच ! यह धूर्तता ! रे कपटी ! मुझे छोड़ दे।

कुछ स्त्रियाँ—(घबड़ाकर ज़ोर से) रे धूर्त ! इसे छोड़ दे।

दो-तीन स्त्रियाँ—सती नारी की आह बुरी होती है। (रोने लगती हैं।)

(धीरे-धीरे चिंता के चिल्लाने का शब्द तट तक पहुँचना बंद हो जाता है। नाव भी दृष्टि से ओझल हो जाती है।)

एक स्त्री—चलो, लौटकर जल्दी से घरवालों को भेजें। अब तक वे लौट आये होंगे। वे तैरकर नाव का पीछा करके चिंता को छुड़ा लेंगे।

दूसरी स्त्री—चलो, जल्दी चलो।

[सब का सवेग प्रस्थान

(पट-परिवर्तन)

ग्यारहवाँ दृश्य

स्थान—वन में दुर्गा देवी का मंदिर

समय—सूर्योदय के पश्चात

(कुछ लोग दुर्गा की मूर्ति के सामने हाथ जोड़े खड़े आरती कर रहे हैं।)

आदि शक्ति हे जननि भवानी !

जिनसे देवों का बल हारा,
विजयी उन पर देवि तुम्हारा
विद्युत-सा अति तीक्ष्ण दुधारा,
मिटे असुर अतिशय अभिमानी !
आदि-शक्ति हे जननि भवानी !

भर लोहू से खप्पर खाली,
माँ लोहू को पीने वाली,
भरता दिशा-दिशा में लाली
तव आँखों का तीखा पानी !
आदि शक्ति हे जननि भवानी !

पहला—बलि लाओ, माता भवानी को भेंट चढ़ायें।

(दो पुरुष श्रीवत्स को लिये आगे बढ़ते हैं और एक स्थान पर रुक जाते हैं जहाँ एक पुरुष तलवार लिये खड़ा है।)

कुछ पुरुष—(श्रीवत्स की ओर देख कर) यह बलि श्रेष्ठ है। भवानी देवी अवश्य प्रसन्न होंगी।

श्रीवत्स—(चौंककर) क्या ? मुझे बलि चढ़ाया जायगा ?

दूसरा—जी हाँ, ऐसे शुभ कार्य के लिए क्या पूछना ?

श्रीवत्स—यदि शुभ कार्य समझते हो तो तुम्हीं क्यों नहीं पुण्य कमाते ?

तीसरा—जितने उच्च-कुलीन पुरुष की बलि हो, उतनी ही देवी अधिक प्रसन्न होती हैं।

श्रीवत्स—भाइयो ! मैं कहना नहीं चाहता था परंतु विवश होकर कहना पड़ा कि मैं किसी देश का राजा हूँ, विपदा का मारा हूँ, मुझे मत सताओ......

चौथा—अच्छा, आप राजा हैं ! बहुत ठीक, बलि के लिए राजा मिलना बड़े सौभाग्य की बात है।

पाँचवाँ—ऐसा बढ़िया अवसर कभी भाग्य से ही मिला करता है।

छठा—राजा जी ! अब हम से छुटकारा पाना बड़ा कठिन है। अपने इष्ट देव का स्मरण करो, और बलि के लिए तैयार हो जाओ।

श्रीवत्स—मुझे चढ़ा दो बलि, मुझे कोई भय नहीं। परंतु मेरी स्त्री को कोई हर ले गया है, उसे पापी के हाथ से मुक्त करना है।

दूसरा—पहले आप मुक्त हो लो। शरीर क्या, आत्मा भी मुक्त हो जायगा !

तीसरा—अरे ! यह राजा नहीं है। यदि यह राजा होता तो इसकी स्त्री को भला कौन हर सकता था ? यह झूठ बोलता है।

श्रीवत्स—(तीव्रता से) मैं झूठ कभी नहीं बोलता।

चौथा—इसने सोचा होगा कि राजा कहने से छुटकारा मिल जायगा।

दूसरा—महाशय! करो अपनी अंतिम यात्रा की तैयारी।

श्रीवत्स—मैं सदा अंतिम यात्रा के लिए उद्यत हूँ, परंतु......

पहला—अरे, यह ऐसे न मानेगा। यदि यह अपने इष्ट देव का स्मरण नहीं करता तो न सही। बलि चढ़ाओ।

खड्गधारी पुरुष—(तलवार ऊपर उठाकर) महाभाग! सावधान हो जाओ।

(दो पुरुष श्रीवत्स को नीचे लिटा देते हैं और उनकी गर्दन तख्ते पर रख देते हैं।)

खड्गधारी पुरुष—(विस्मित होकर तलवार नीची करके) इस व्यक्ति का अपूर्व धैर्य है। बलि चढ़ाये जाने के समय लोग रोते हैं और भाँति-भाँति की बाधाएँ डालते हैं, परंतु यह महाभाग शांत है, गंभीर है, मानो इसे भविष्य का कुछ ज्ञान ही नहीं। मैंने पहले कभी ऐसा कोई व्यक्ति नहीं देखा।

श्रीवत्स—जब भगवान् की यही इच्छा है तो इसमें बाधा क्यों? शनि देव! आपकी इच्छा पूर्ण हो! अथवा आप भी प्रभु की आज्ञा के केवल निमित्त-मात्र हैं।

खड्गधारी पुरुष—बस, सावधान। बोलो—चंडी देवी की जय।

(सब लोग चंडी देवी का जयकार करते हैं। खड्गधारी पुरुष अपनी तलवार से श्रीवत्स की गर्दन को लक्ष्य करता है।)

(पटाक्षेप)

चौथा अंक

पहला दृश्य

स्थान—वन-प्रदेश

समय—सायंकाल से पूर्व

(महर्षि नारद का गाते हुए प्रवेश)

है सतीत्व की शक्ति अपार !

विश्व-कुंज का फूल सती है
जगती-तल का मूल सती है,
पापों के प्रतिकूल सती है,
उस पर आश्रित है संसार !
है सतीत्व की शक्ति अपार !

स्वर्ग सती के घर में बसता,
पुण्य सती के मन में हँसता,
आँखों में वर-दान बरसता,
सती विश्व का वैभव-सार ।
है सतीत्व की शक्ति अपार !

नारद—(सती का प्रताप क्या नहीं कर सकता ? सती के प्रताप से यम भी त्रस्त रहता है। सती के आग्रह पर यम को उसके पति के भी प्राण लौटाने पड़ते हैं) और फिर शनि की यम जैसी शक्ति कहाँ ? शनि को सती के प्रताप के आगे झुकना पड़ेगा।

तभी मुझे हर्ष होगा । नारायण ! नारायण !! (रुककर) सती-शिरोमणि चिंता भी सेठ के बंधन से शीघ्र मुक्त हो जाती परंतु...परंतु शनि-देव की लीला कैसे हो ? परंतु ...परंतु आश्चर्य की बात है कि शनि देव के पिता सूर्य देव ने चिंता की प्रार्थना पर उसके शरीर पर कोढ़ कर दिया है । उसके शरीर से तीव्र दुर्गंध आने लगी है, अब उसे कौन स्पर्श कर सकेगा ? शनि देव अब भला अपने पिता पर क्रोध दिखायें । आह ह ह ! उन पर क्रोध क्या दिखायेंगे ? चुप रहेंगे । परंतु......परंतु उनके लिए चुप रहना असंभव है । यह सुनकर कि श्रीवत्स को लक्ष्मी ठीक समय पर पहुँचकर बलि होने से बचा ले गईं, उनके क्रोध का वार-पार न रहा होगा । लक्ष्मी ! अब तुमने मुझे प्रसन्न कर दिया । श्रीवत्स का जीवन नष्ट हो जाने पर मुझे भारी पाप लगता । मैंने ही उस पुण्यात्मा की प्रशंसा करके उसे परीक्षा में डाला है । प्रभु मेरी लाज रखेंगे । नारायण ! नारायण !!

('है सतीत्व की शक्ति अपार' गाते हुए प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

दूसरा दृश्य

स्थान—नदी में सेठ की नाव

समय—सायंकाल

(नाव में बंदी चिंता एक कमरे में व्याकुल बैठी है शरीर से दुर्गंध निकल रही है। हाथ-पैर रस्सी से बँधे हैं।)

चिंता—कहते हैं कि पुरुष और स्त्री का संबंध ऐसा है कि दो शरीर और एक प्राण। परंतु मेरे विषय में यह बात ठीक नहीं कही जा सकती। दो वर्ष व्यतीत हो लिये और मैं अभागिन अभी तक जीवित हूँ। मैं नहीं जानती कि स्वामी की इन दो वर्षों में क्या गति हुई। यह दुष्ट सेठ मुझे छोड़ता नहीं। पहले तो मुझे वह यही कहता था कि यह यात्रा पूरी होने पर तुम्हें छोड़ दूँगा, परंतु अब वह मेरी बात पर कान नहीं धरता। पहले तो उसे घृणित विचार घेर रहे थे परंतु सूर्य-देव की कृपा से, मेरा शरीर कुरूप हो जाने के कारण, वह बात जाती रही। कोटिशः धन्यवाद है सूर्यदेव को! उनकी कृपा से मेरी लाज बच गई! हा! उस स्थिति का स्मरण कर रोमांच हो आता है। न जाने पुरुष पर-स्त्री पर पाशविक कुकर्म करने पर उतारू क्योंकर हो जाता है! स्त्री-रूप भी विचित्र वस्तु है। स्त्री का रूप ही स्त्री के लिए साक्षात् काल है। रूप से मोहित होकर पुरुष अपने कर्म, धर्म, पाप, पुण्य, आदि सब को तिलांजलि दे देता है। परंतु हर एक को कुकर्म का फल मिलता है। दंड पाये बिना कोई न रह सका। परंतु मेरे

विषय में अभी तक पापी को दंड क्यों नहीं मिला ? मेरा उद्धार क्यों नहीं हुआ ? हाँ, क्यों नहीं हुआ ? (आँखें डबडबा आती हैं) क्या स्वामी के दर्शनों की आशा छोड़ दूँ ? माता लक्ष्मी की सांत्वना मेरे जीवन को लंबा किये जाती है। अन्यथा मैं यह जीवन-लीला समाप्त कर देती।

(लक्ष्मी सहसा प्रकट होती हैं)

लक्ष्मी—पुत्री ! फिर तुम उद्विग्न हो रही हो ? क्या मेरे वचनों पर विश्वास नहीं रहा ?

चिंता—(हाथ जोड़कर) माता ! आपके वचनों पर मुझे अटल विश्वास है। किसी समय अधीर हो जाती हूँ, विवश हो जाती हूँ। (रोने लगती हैं)

लक्ष्मी—पुत्री ! अधीर मत होओ। अवधि समाप्त होने पर श्रीवत्स तुम्हारा उद्धार करेंगे। अब थोड़ा ही विलंब है। तनिक धीरज धरो, शांत रहो।

चिंता—शांत कैसे हो ? स्वामी की इस समय क्या दशा होगी ?

लक्ष्मी—चिंता ! श्रीवत्स सकुशल हैं, तुम उनके लिए व्याकुल मत होओ। मैं उनका कोई भी अनिष्ट न होने दूँगी। तनिक प्रतीक्षा करो, फिर सुख-वर्षा होगी।

चिंता—अच्छा, माता ! मैं प्रतीक्षा करती हूँ। इतनी देर प्रतीक्षा की है, कुछ समय और सही।

लक्ष्मी—अब आत्म-हत्या का विचार छोड़ दो। लो, तुम्हारे बंधन खोल देती हूँ।

(लक्ष्मी चिंता के बंधन खोल देती हैं। चिंता नत मस्तक होती है। लक्ष्मी धीरे-धीरे अंतर्धान हो जाती हैं।)

चिंता—माता चली गईं। क्या करूँ ? मेरा यहाँ नाक में दम है। यहाँ से छुटकारा कैसे हो ? (सोचकर) हाँ, यह उपाय ठीक है। मेरे हाथ-पैर तो खुल गये हैं, अवसर पाकर कूद पड़ूँगी और तैरकर किनारे जा पहुँचूँगी, परंतु इस दुष्ट को दंड देना होगा। (सोच कर) हाँ, कूदने से पहले नाव में छेद किये देती हूँ। ये नाविक तो तैर कर बच जायँगे, परंतु इनका वस्तु-भंडार न बच सकेगा।

(लोहे के पैने टुकड़े से नाव में छेद करने लगती हैं।)

सेठ—अरे कोई देखो तो, वह चुड़ैल सो रही है या जग रही है।

(एक सेवक खिड़की में से झाँकता है और चिंता को बंधन-रहित पाकर विस्मित हो जाता है।)

सेवक—सेठ जी ! उसके तो हाथ-पैर खुले पड़े हैं। जब चाहे वह नदी में कूद पड़े।

सेठ—यह कैसे हो सकता है ? मैंने अपने सामने उसके हाथ-पैर बँधवाये थे।

सेवक—सेठ जी ! रस्सी उसके पास पड़ी है। उसने बंधन खोल लिये दीखते हैं।

सेठ—तूने खाना खिलाने के लिए उसके हाथ खोले थे। बाद में गाँठ ढीली लगाई होगी।

सेवक – नहीं तो, सेठ जी! मैंने गाँठ कसकर लगाई थी।

सेठ—तो क्या बंधन अपने-आप खुल गये? असंभव है! क्या उसने दाँतों से रस्सी काट ली? यह भी नहीं हो सकता। कोढ़वाले हाथ दाँतों पर न रख सकी होगी। न जाने यह कौन-कौन से कौतुक दिखायेगी। अच्छा, देखता हूँ।

(सेठ उठकर चिंता को झाँकता है, चिंता लोहे के पैने टुकड़े से नाव में छेद कर रही दिखाई देती है।)

सेठ—(क्रोध से) ठहर, डाकिनी! ठहर। (सेवकों की ओर देखकर) जल्दी आओ।

(चिंता पैना लोहा हाथ में लिये खड़ी हो जाती है।)

(पट-परिवर्तन)

तीसरा दृश्य

स्थान—सुरभि-देवी का आश्रम

समय—सायंकाल

(श्रीवत्स थक जाने से धीरे-धीरे चल रहे हैं और विश्राम के लिए कोई स्थान खोज रहे हैं)

श्रीवत्स—अढ़ाई वर्ष व्यतीत होने लगे, भरसक यत्न किया, परंतु सब निष्फल। चिंता का कुछ पता न लगा। अब उन्हें कहाँ ढूँढ़ूँ? आज सारा दिन अनशन किये ही व्यतीत हुआ। अब देह थक कर चूर हो गई है। अब कहाँ जाऊँ? क्या करूँ? माता लक्ष्मी के वचन ही एक-मात्र आशा-तंतु हैं। उन्होंने कहा था कि अवधि समाप्त होने पर मुझे चिंता स्वयं मिल जायँगी। अच्छा, तो यहीं कहीं विश्राम करता हूँ; सूर्योदय, भाग्य का सूर्योदय, होने की प्रतीक्षा करता हूँ। (एक स्थान पर ठहरकर) बिना भोजन किये शरीर अशक्त हो रहा है एक पग भी नहीं चला जाता है। (इधर-उधर दृष्टि दौड़ाते हैं। एक ओर सुंदर फलों से लदे हुए वृक्ष दिखाई देते हैं। वृक्षों के एक ओर पृथ्वी से तीन हाथ ऊँची दीवार दिखाई देती है। कुछ दूर एक विशाल द्वार दिखाई देता है) वह उपवन कैसा रमणीय है! उधर मन भला क्यों न खिंचे? वहीं चलता हूँ। (उधर बढ़ते हैं। प्रवेश करके) अहहह! प्रकृति की कैसी अद्भुत छटा छाई है! स्वर्गीय नंदन-वन का वर्णन सुना था, वैसा ही उपवन देख रहा हूँ। मकरंद पान करने के लिए भौंरे फूलों पर मँडरा रहे हैं,

रंग-बिरंगी तितलियाँ भी पुष्प-रस के लिए उड़ रही हैं। सुगंध से सारा स्थान महक रहा है। नाना प्रकार के फलों से वृक्ष लदे हैं। (एक वृक्ष की ओर देखकर) यहाँ आम कितने पके हैं। चलूँ, कुछ आम चख कर देखता हूँ कि साधारण आमों में और इनमें कितना अंतर है। (आगे बढ़कर आम तोड़ने लगते हैं, सहसा कुछ विचार आ जाता है। चौंककर पीछे हट जाते हैं।) हाँ, ठीक है। यह आम तोड़ना पाप है। यह चोरी है। स्वामी की आज्ञा बिना कोई वस्तु उठा लेना चोरी है। धन्य हो, प्रभो! ठीक समय पर मुझे चेतावनी दे दी। अच्छा चलूँ, इस उपवन की अनूठी छटा से आँखें तृप्त करूँ। (आगे बढ़ते हैं।)

दृश्य-परिवर्तन

(श्रीवत्स एक सुंदर सरोवर के किनारे खड़े दिखाई देते हैं। सरोवर में कमल खिल रहे हैं; भ्रमर कमलों पर बैठे हैं, सुगंधित वायु चल रही है। बहुमूल्य रत्नादि अपनी भिन्न-भिन्न आभाओं से स्वच्छ जल को रंग-बिरंगा कर रहे हैं।)

श्रीवत्स—इस सरोवर की शोभा निराली है। यहाँ बैठकर थकान को दूर करता हूँ।

(धीमी-धीमी सुरभित वायु के थपेड़े लगने से श्रीवत्स ऊँघने लगते हैं और सहसा किसी शब्द से चौंक पड़ते हैं।)

श्रीवत्स—यह क्या? यह शब्द कैसा?

(सुर-बालाओं का प्रवेश)

श्रीवत्स—(देखकर सविस्मय, धीरे से) ये बालाएँ कैसी? यह स्थान कौन-सा है? (खड़े हो जाते हैं)

(सुरबालाएँ आगे बढ़ती हैं)

एक—महाराज श्रीवत्स ! विस्मित न होइये। यह सुरभिदेवी का आश्रम है।

श्रीवत्स—(चौंककर) सुरभिदेवी का आश्रम ? मैं यहाँ कैसे पहुँचा ?

दूसरी—लक्ष्मीदेवी के अनुग्रह से।

श्रीवत्स—और आप कौन हैं ?

पहली—हम सुरबालाएँ हैं। हम आपके मनोविनोद के लिए आई हैं। (अन्य सुरबालाओं से) सखियो ! गाओ, महाराज का मन बहलाओ।

(सुरबालाएँ नृत्य करती हैं)

हैं कमल फूले सरोवर में, हृदय तू फूल।
मस्त हो भौंरे विचरते तू विसुध हो झूल।
बह रहा सुरभित समीरण पुष्प की भर धूल।
मग्न हो आनंद में मन सब व्यथाएँ भूल !

(सुरभिदेवी के आने की आहट सुनकर सुर-बालाएँ नृत्य बंदकर आधी एक ओर हटने लगती हैं, शेष दूसरी ओर।)

एक—(जाते-जाते) महाराज ! सुरभि देवी आ रही हैं। अभिवादन करो।

[सुरबालाओं का एक ओर से प्रस्थान

(सुरभि-देवी का दूसरी ओर से प्रवेश)

श्रीवत्स—(सहर्ष) पूज्य देवी ! देव-जननी ! अभिवादन करता हूँ। (सिर झुकाते हैं)

सुरभि—वत्स ! तुम्हारा कल्याण हो। तुम थक रहे हो, आओ, मेरा दूध पीओ और शांति प्राप्त करो।

श्रीवत्स—माता ! आपका दूध रूपी अमृत पानकर देवगण कृतकृत्य होते हैं। मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ कि मुझे वह प्राप्त हो सके ? मैं उसका अधिकारी नहीं हो सकता।

सुरभि—पुत्र ! चिंता मत करो। अब निश्चिंत हो जाओ। लक्ष्मी देवी की तुम पर असीम कृपा है। वही तुम्हें यहाँ लाई हैं। तुम मुझे अपनी माता समझो। मैं तुम्हारे लिए अपना दूध भेजती हूँ, उसे पीकर विश्राम करो।

श्रीवत्स—जो आज्ञा।　　　　[सुरभि-देवी का प्रस्थान

(सुरबालाओं का गड़वा लिए नृत्य करते प्रवेश। आधी एक ओर से आती हैं, आधी दूसरी ओर से। गड़ओं में दूध भरा है। प्रत्येक बाला श्रीवत्स के पास आकर दूध पान कराकर आगे बढ़ जाती है।)

(गीत)

आईं हम ग्वालिन अलबेली !
दूध अमृत से भी है प्यारा !
इसमें है जीवन की धारा !
अखिल विश्व का यही सहारा,
पर्ण-कुटी या रम्य हवेली।
आईं हम ग्वालिन अलबेली !

घट में दूध छलकता जाता,
सुर-नर-मुनि का मन ललचाता,
विधि बालक बन पीने आता,
मुसकाता है शिव पहेली!
आईं हम ग्वालिन अलबेली

[सब का धीरे-धीरे प्रस्थान

श्रीवत्स—(दूध पीकर) आहा! आज अमृत-पान हो गया। पाप कर्म सब कट गये। अब देखें हमारी कर्म-रेखा क्या खेल दिखाती है!

(सुरभि का पुनः प्रवेश)

सुरभि—पुत्र! तुम निष्पाप हो। अधीर मत होओ। अब तुम्हारा भाग्य शीघ्र उदय होने को है। सूर्य-देव की कृपा से चिंता अपूर्व प्रकार से अपने सतीत्व की रक्षा कर रही है। शेष अवधि व्यतीत हो जाने पर तुम यहाँ से जाकर चिंता को पाओगे। अभी यहीं विश्राम करो, यहाँ शनि-ताप से मुक्त होगे। यहाँ उस क्रूर की एक न चलेगी।

श्रीवत्स—अच्छा, देव-जननी! मैं यहीं ठहरता हूँ। यह शुभ अवसर हम मनुष्यों के भाग्य में कहाँ? मेरी धर्मपत्नी सकुशल हैं, यह जानकर मेरा हृदय शांत हुआ!

सुरभि—नर-श्रेष्ठ! जब इच्छा हो, मेरा स्मरण करना, मैं दूध भेज दिया करूँगी। मैं अब जाती हूँ। तुम परिश्रांत हो, विश्राम कर लो। [प्रस्थान

श्रीवत्स—(दूध से भीगी हुई मिट्टी को देखकर) यह पवित्र मिट्टी सुरभि माता के दूध से और भी पवित्र हो गई है। यह मिट्टी अति दुर्लभ है। मैं प्रतिदिन इस मिट्टी को ईंटें बनाकर रख दिया करूँगा। चिंता के मिल जाने पर इन्हीं ईंटों से कुटिया बनाकर रहूँगा।

(मिट्टी एकट्ठी करके ईंटें बना-बनाकर रखने लगते हैं और साथ में गाने लगते हैं।)

मेरा भी छोटा सा घर हो।

विहग चले नीड़ों की ओर,
हो-होकर आनंद विभोर;
मिले न मेरे सुख का छोर,

मुझे मात्र यदि घर सुंदर हो!
मेरा भी छोटा-सा घर हो!

मैं हूँ, मेरी चिंता रानी,
शिशुओं की हो तुतली वाणी,
करें लालसाएँ मनमानी,

घर में बहता सुख-सागर हो?
मेरा भी छोटा-सा घर हो।

श्रीवत्स—अब थक गया। अच्छा, यहीं लेट कर थकान हटाता हूँ।

(आँखें बन्द कर सोने का नाट्य करते हैं। लक्ष्मी सहसा प्रकट होती है और ईंटों पर हाथ रख कर अंतर्धान हो जाती हैं। ईंटें हिल जाने से गिर पड़ती हैं।)

श्रीवत्स—(चौंककर आँखें खोलते हुए) यह क्या ? यहाँ आया तो कोई भी नहीं। (ईंटों को चमकती हुई देखकर, सविस्मय) हैं ! ये ईंटें चमकने क्यों लगीं ? (ध्यान से देखकर) सब ईंटें सोने की हो गईं। अब दिन फिरने वाले हैं। अच्छे दिनों में मिट्टी भी सोना हो जाती है। यह सब माता लक्ष्मी की कृपा का फल है।

(ईंटें उठाकर देखने लगते हैं)

(पट-परिवर्तन)

चौथा दृश्य

स्थान—हिमालय पर्वत का एक शिखर

समय—दिन का पहला पहर

(शनि देव का सक्रोध प्रवेश)

शनि—अब सहन नहीं होता। अबला जाति मेरे कार्य में हस्तक्षेप करे, मेरा सामना करे, ऐसी धृष्टता अक्षम्य है। मेरा घोर अपमान है। मैं श्रीवत्स से इसका बदला लूँगा। उसी मूर्ख के निर्णय से लक्ष्मी का साहस दुगना हो गया है। लक्ष्मी समझती है कि श्रीवत्स को सुरक्षित स्थान में पहुँचा दिया है, वहाँ कोई भय नहीं, कोई खटका नहीं। मुझ में यदि कुछ भी बल है, कुछ भी शक्ति है, तो श्रीवत्स को वहाँ से बाहर निकाल लाऊँगा। देखूँगा, लक्ष्मी मेरा क्या बिगाड़ सकती है। लक्ष्मी! लक्ष्मी!! मेरे क्रोध ने कई परिवारों को तहस-नहस कर दिया, धन-ऐश्वर्य-संपन्न राज्य चौपट कर दिये, ऊँचे-ऊँचे राज-प्रासादों से युक्त नगर नष्ट-भ्रष्ट कर दिये, लक्ष्मी को कई राज्य तथा नगरों से निकाल बाहर कर दिया। वहाँ भला लक्ष्मी मुझ से जीत सकती है? कभी नहीं, कदापि नहीं। "लक्ष्मी की जय हो, लक्ष्मी की जय हो" यह जयकार कोई पुरुष......

(गाते हुए महर्षि नारद का प्रवेश)

जग में है लक्ष्मी का राज!

　　जिस पर होता उसका प्यार,

भर जाता उसका भंडार,
करुणा-मय उसका व्यवहार,

रखती वह भक्तों की लाज !
जग में है लक्ष्मी का राज !

विष्णु-प्रिया का जग में मान,
सब धरते हैं उसका ध्यान,
देती वह धन-वैभव दान !

सब के करती पूरे काज !
जग में है लक्ष्मी का राज !

शनि—महर्षि ! आज आप सनकी क्यों हो रहे हैं !

नारद—कहिये, क्या बात है ?

शनि—आज लक्ष्मी की झूठी महिमा क्यों गाई जा रही है ?

नारद—(मुसकराकर) झूठी महिमा ! झूठी कैसे ? अभी-अभी आप भी तो लक्ष्मी का जयकार कहकर अपने हृदय की उदारता प्रकट कर रहे थे।

शनि—लक्ष्मी का जयकार और मैं कहूँ ! कभी नहीं, कदापि नहीं।

नारद—परंतु............परंतु मैंने तो अभी-अभी आपको "लक्ष्मी की जय हो" कहते सुना है।

शनि—(हँसकर) आपने धोखा खाया, आपके कानों ने धोखा खाया। मेरा तात्पर्य था कि यह जयकार कोई पुरुष नहीं कहेगा। प्रत्येक नर-नारी तथा सुर-असुर को लक्ष्मी की निस्सारता

अत्यस्त हो जायगी। लक्ष्मी का आदर-सम्मान संसार से उठ जायगा।

नारद—नारायण! नारायण!! परस्पर का वैर-विरोध मनुष्य के हृदय को क्या, देवता के हृदय को भी, कितना संकुचित कर देता है!

शनि—महर्षि! मैं अब तक आपका आदर करता था, परंतु आपकी बुद्धि लुप्त हो गई दीखती है। अभी तो आप मेरे हृदय की उदारता की बात कह रहे थे और अभी उसकी संकीर्णता का दोष देने लगे। जैसे आपका कहीं पैर नहीं जमता, वैसे ही आपका (सँभलकर) क्या कहूँ, क्षमा कीजियेगा।

नारद—शनि देव! मन में बात क्यों रखते हो? कह डालो। नहीं तो हृदय में उस क्रोध-भरी बात के कारण और उथल-पुथल मच जायगी। मन की बात कह देने से हृदय शांत हो जाता है।

शनि—महर्षि! तभी आप इधर की उधर और उधर की इधर लगाते फिरते हैं। कदाचित् आप का हृदय इसी प्रकार शांति प्राप्त करता है। मैंने देवताओं के सामने, लक्ष्मी के जन्म के विषय में, जो वचन कहे थे आपने वे वचन इसी कारण उससे जा कहे होंगे।

नारद—नारद असत्य बोलना नहीं जानता। जैसा देखता व सुनता है, वैसा कह देता है। नारद सत्य का उपदेश देता है, न कि छल-कपट का।

शनि—सत्य का उपदेश नहीं, परस्पर वाद-विवाद का उपदेश। अस्तु, जाने दीजिये, जाइये, लक्ष्मी से कह दीजिये कि वह सावधान हो जाय। अब मैं तीव्र प्रहार करने को उद्यत हूँ। अब देखूँगा कि कौन-सी शक्ति मुझसे जीत सकेगी।

नारद—नारायण ! नारायण !! मुझे देखकर आपको तो क्रोध मानो सीढ़ी लगाकर चढ़ने लगता है। चलूँ।

शनि—महर्षि ! सावधान रहना, कहीं सीढ़ी आप पर ही न आ गिरे।

[नारद का 'जग में है लक्ष्मी का राज' गाते हुए प्रस्थान

शनि—(सोचकर) हाँ, बस यही ठीक उपाय है। लक्ष्मी ! कुछ शक्ति हो तो दिखाना। अह ह ह !

[हाथ मसलते हुए प्रस्थान

(पट-परिर्तन)

पाँचवाँ—दृश्य

स्थान—सुरभि देवी का उद्यान

समय—दोपहर

(विचार-मग्न श्रीवत्स धीरे-धीरे टहलते दिखाई देते हैं।)

श्रीवत्स—माता लक्ष्मी की अपार कृपा से मेरा संकट कट चला। माता सुरभि ने भी मुझ पर विशेष अनुग्रह दिखाया है। अब मैं शेष समय चिंता की खोज में लगाऊँ जिससे अवधि समाप्त होते ही वह मुझे मिल जाय, तनिक भी और विलंब न हो। मुझे तो अब सुख है, परंतु नहीं जानता चिंता पर क्या बीत रही है। माता लक्ष्मी के प्रभाव से मेरी बनाई हुई मिट्टी की ईंटें सोने की बन जाती हैं। अब मेरे पास पुनः असीम संपत्ति एकत्र हो गई है। अब चिंता को मुक्त कराऊँ। माता सुरभि ने कहा था कि वह सूर्य देव की कृपा से, अपूर्व प्रकार से, अपने सतीत्व धर्म की रक्षा कर रही है। अवश्य कोई नीच उसे कष्ट दे रहा है। मैं वहाँ शीघ्र पहुँचकर उसका उद्धार करता हूँ। परंतु एक कठिनाई है। माता लक्ष्मी तथा सुरभि देवी अभी मुझे यहाँ से जाने की अनुमति नहीं देतीं। चिंता को देखे तीन वर्ष हो चुके, तीन वर्ष क्या तीस युग व्यतीत हो गये प्रतीत होते हैं। मैं नहीं जानता कि अनेक कष्टों के कारण उसकी क्या दशा हो रही होगी। मैं यहाँ निश्चिंत पड़ा हूँ, मुझे धिक्कार है! तो क्या करूँ? क्या बिना आज्ञा लिये यहाँ से निकल चलूँ? (कुछ सोचकर) हाँ, सोने की ईंटें एक गठरी में

बाँधकर ले जाता हूँ। ये ईंटें माता का प्रसाद हैं और आश्रम के स्मृति-चिह्न हैं। इन्हें साथ ले चलना ही ठीक है।

(टहलते हुए आश्रम-द्वार पर पहुँच जाते हैं।
आकाशवाणी सुनाई देती है।)

"श्रीवत्स ! चिंता तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है, यहाँ से निकल आओ। वह तुम्हें शीघ्र मिल जायगी।"

श्रीवत्स—(आकाशवाणी से विस्मित होकर) "वह मुझे शीघ्र मिल जायगी" यह मधुर शब्द किसने कहे हैं ? यह दयालु देवता कौन हो सकता है ? क्या यह लक्ष्मी देवी ने कहा है ? नहीं वे नहीं हो सकतीं ? वे तो मुझे अवधि पूरी होने से पहले जाने की अनुमति नहीं देतीं। (सोचकर) और कौन होगा ? किस देवता का, मेरी दुर्दशा देखकर, हृदय पसीजा होगा ? (सोचकर) हाँ, यह संभव है। सूर्य देव ने चिंता पर कृपा की है। उसी की प्रार्थना से प्रेरित होकर भगवान् दिवसनाथ मुझे ऐसा कह रहे हैं। (आकाश की ओर देखकर) भगवान् सूर्य देव ! आ रहा हूँ। कुछ सोने की ईंटें लेकर आता हूँ।

[प्रस्थान

(नेपथ्य में किसी का अट्टहास सुनाई देता है।)

(पट-परिवर्तन)

छठा दृश्य

स्थान—निर्जन प्रदेश

समय—सायंकाल

(शनि का हँसते हुए प्रवेश)

शनि—देखा, कौन बड़ा है ? लक्ष्मी श्रीवत्स को सुरक्षित स्थान पर ले गई थी। मैं उसे कैसे बाहर निकाल लाया ? दो देवियों की शक्ति मेरे सामने फीकी पड़ गई ? अब लक्ष्मी और सुरभि दोनों को अपनी यथार्थ शक्ति का परिचय प्राप्त हो जायगा। मेरे कृष्ण वर्ण का निरादर किया था, अब प्रतीत हो जायगा कि कृष्ण वर्ण वाले शनि में कितनी शक्ति है !

(गाता है)

मेरी आँखों में है आग !

सर्वनाश में मैं सुख पाता !
सुख-उपवन को राख बनाता !
पल में जग में प्रलय बुलाता,
गाता हूँ जब भैरव राग !
मेरी आँखों में है आग !

मुझ से भय खाते हैं तारे,
मुझ से डरते देव बिचारे,
मुझ से हैं ब्रह्मा भी हारे,
खेल रहा लोहू से फाग !
मेरी आँखों में है आग !

शनि—अब चलता हूँ। अपना शेष विचार कार्य-रूप में परिणत करता हूँ। [प्रस्थान

(सिर पर गठरी लादे परिश्रांत श्रीवत्स का प्रवेश)

श्रीवत्स—(विश्राम के लिए तनिक रुक कर) मार्ग तो परिचित दिखाई देता है। इसी मार्ग से मैं आश्रम की ओर गया था, भला इस ओर चिंता कहाँ होगी। यहाँ तो मैंने एक-एक कोना खोज डाला था। परंतु देव-वाणी भी मिथ्या नहीं हो सकती। संभव है चिंता को हर ले जाने वाला अब इधर आ निकले और मेरा उससे साक्षात् हो जाय। अच्छा, कुछ विश्राम कर लूँ। ईंटों के बोझ ने शरीर चूर-चूर कर दिया। सोने का लोभ इन्हें उठवा लाया। शनि ने मणि, रत्न आदि की गठरी हर ली थी, माता लक्ष्मी ने मुझे फिर धनी कर दिया। माता लक्ष्मी के प्रति एक अपराध अवश्य हुआ। उनसे आज्ञा लिये बिना चला आया। वे मेरा अपराध अवश्य क्षमा करेंगी।

(एक स्थान पर गठरी रख कर बैठते हैं, सहसा किसी का स्वर सुनाई देता है।)

चल तुझ को ले जाऊँ पार,
जहाँ खिले हैं फूल अपार,
जहाँ बह रहा सौरभ-सार,
जिसे देख हो हर्ष अपार,
तुझे दिखाऊँ वह संसार !
चल तुझ को ले जाऊँ पार !

मेरी तरणी डग-मग डोल,
गाती है आशा के बोल,
तू भी अपना हृदय टटोल,
कर अभिलाषा का शृंगार !
चल तुझ को ले जाऊँ पार !

श्रीवत्स—(चौंककर) यह कौन गा रहा है। यह गीत तो किसी माँझी का प्रतीत होता है। देखूँ, वह कहाँ है। (गठरी उठा-कर फिर आगे बढ़ते हैं) ओह। शरीर को शीतल वायु का स्पर्श होने लगा। जान पड़ता है कि कोई नदी अवश्य इधर है। (एक ओर देखकर) वह रही नदी ! प्रभो ! तेरा कोटिशः धन्यवाद ! अब जल पीकर प्यास दूर करता हूँ ! देह में फिर स्फूर्ति जग उठेगी। सायंकाल होने को है, किंतु चिंता की आशा दूर-दूर जा रही प्रतीत होती है। (नदी की ओर बढ़ते हैं)

(गीत स्पष्ट सुनाई देता है)

चल तुझ को ले जाऊँ पार।
जहाँ खिले हैं फूल अपार,
जहाँ बह रहा सौरभ सार,
जिसे देख हो हर्ष अपार,

श्रीवत्स—(देखकर) अरे ! यह तो नाव इधर ही आ रही है। देव-वाणी के सत्य होने के लक्षण दिखाई देने लगे हैं। संभव है चिंता इसी नाव पर हो। (कुछ सोचकर) नहीं, अभी अवधि समाप्त न हुई होगी। अभी चिंता के मिलने में विलंब दिखाई देता है। अच्छा, इसी नाव पर बैठ कर चिंता को ढूँढता हुआ किसी

दूसरे स्थान को जाता हूँ। वहाँ कुछ स्वर्ण बेचकर धन प्राप्त हो सकेगा। फिर खाने-पीने की सामग्री में कुछ कठिनाई न रहेगी। माँझी लोगों को पुकारता हूँ।

(श्रीवत्स माँझियों को पुकारते हैं, दो माँझियों का प्रवेश)

एक—क्यों भाई ! कहाँ चलोगे ?

श्रीवत्स—कहीं ले चलो।

दूसरा—भले आदमी, सब कोई अपने निश्चित स्थान को ही जाते हैं। आप अनोखे हैं।

श्रीवत्स—मेरे पास सोने की ईंटें हैं, वे बेचनी हैं, सो कहीं ले चलो, मेरा काम हो जायगा। सोने के ग्राहक सब कहीं मिल जाते हैं।

पहला—(आँखें फैलाकर धीरे से) तब तो बढ़िया अवसर मिला है। (स्पष्ट) अच्छा चलो। (दूसरे माँझी से) अरे! नाव इसी किनारे ले आओ। [दूसरे माँझी का प्रस्थान

पहला—सेठ ! आप निर्जन वन में कैसे पहुँच गये ! सोने जैसी अमूल्य वस्तु आपके साथ है और आप इधर अकेले भटक रहे हैं।

श्रीवत्स—भाई माँझी ! मैं कोई सेठ नहीं हूँ। मुझे अकेले में भी कोई भय नहीं है। जिस दाता ने यह धन दिया है वही इसकी रक्षा करेगा। यदि मेरे भाग्य में यह धन नहीं है, तो मेरे पास यह करोड़ों यत्न करने पर भी रह नहीं सकता और यदि मेरे भाग्य में यह धन है, तो कोई इसे हर नहीं सकता।

पहला—महाशय ! आप तो बड़े ज्ञानी दिखाई देते हैं।

(नाव के स्वामी सहित कुछ माँझियों का प्रवेश)

एक—नाव किनारे लगा दी है। यह हमारे स्वामी हैं, इनसे बात कर लो।

नाव का स्वामी—भद्र पुरुष ! तुम कौन हो ? इस निर्जन वन में इस भयानक नदी-तट पर कहाँ घूम रहे हो ? तुम्हें हिंसक जंतुओं का भय नहीं है, न घातक मनुष्यों के आक्रमण की आशंका ! तुम बड़े विचित्र व्यक्ति जान पड़ते हो। अपना परिचय तो दो।

श्रीवत्स—मैं अपना परिचय क्या दूँ। मेरे पास सोने की ईंटें हैं, उन्हें बेचना चाहता हूँ।

नाव का स्वामी—अच्छा, तो बैठो भाई !

एक—सेठ जी ! पहले आप इनसे अपना भाग निश्चित कर लें। फिर कहीं झगड़ा न हो।

नाव का स्वामी—(सोचकर) भाई माँझी ! तो लाभ में हमारा कितना भाग होगा ?

श्रीवत्स—एक चौथाई भाग आप ले लें।

नाव का स्वामी—भाई ! यह तो कम है। नाव मेरी लदी पड़ी है। जीवन संकट में भी डालूँ और कुछ लाभ न हो ?

श्रीवत्स—सेठ जी ! मैं विपद् का मारा हूँ। आप सुखी हैं। आप दुखी का दुःख कैसे अनुभव कर सकते हैं ?

नाव का स्वामी—बड़े दुखी हो ! सोने की ईंटें लिए व्यापार कर रहे हो और बड़े दुखी बनते हो ! अच्छा, एक तिहाई भाग

मेरा रहा। आप एक तेजस्वी भद्र पुरुष जान पड़ते हैं, एक बार कम ही लाभ सही। नहीं तो आधा लाभ लेता।

श्रीवत्स—अच्छा, एक तिहाई सही, सेठ! आप प्रसन्न हों।

नाव का स्वामी—(एक माँझी से) अरे! ले आओ गठरी नाव पर। (श्रीवत्स से) आइये, आइये।

(माँझी गठरी उठाकर नाव की ओर बढ़ता है, नाव का स्वामी, श्रीवत्स तथा शेष माँझी उनके पीछे पीछे जाने लगते हैं।)

(पट-परिवर्तन)

सातवाँ दृश्य

स्थान—नाव में चिंता का कमरा

समय—आधी रात

(चिंता एक कमरे में बंद पड़ी हैं। किसी स्वप्न से उनकी निद्रा भंग हो जाती है और वे सोचने लगती हैं।)

चिंता—माता लक्ष्मी देवी के वचन मेरे प्राणों के लिए अमृत-सिंचन का काम कर रहे हैं। उनके बिना मेरे प्राणों का कभी का अंत हो चुका होता। उन्होंने मुझसे कहा है कि मुझे स्वामी के दर्शन शीघ्र होंगे। अब अवधि समाप्त होने को है। हाय! मैं नहीं जानती शनि देव की कोपाग्नि में हमें अभी कब तक ईंधन बने रहना पड़ेगा! मुझे तो बंदी हुए न जाने कितने युग से व्यतीत हो गये। एक-एक मास एक-एक युग प्रतीत होता है। माता लक्ष्मी ने कहा था कि मैं उन्हें सुरभि देवी के आश्रम में पहुँचा आई हूँ। यह सुन कर तनिक धैर्य बँधा है। (रुककर) बड़ी दुर्गंध आ रही है। क्या करूँ? विवश हूँ। दुर्गंध हटाती हूँ तो सती धर्म पर आक्रमण होने का भय आ खड़ा होता है। अच्छा, इतना समय.........

(नदी में कुछ गिरने का भारी शब्द होता है और किसी के चिल्लाने का शब्द सुनाई पड़ता है।)

"हाय! चिंता! चिंता!! भीषण विश्वासघात! मैं मरा... तुम...... "

चिंता (चौंककर) यहाँ मेरा नाम संबोधन करने वाला कौन है ? क्या प्राणाधार यहाँ नाव पर पहुँचे थे ? देखती हूँ ।

(खिड़की खोलकर झाँकती है । श्रीवत्स की दृष्टि चिंता पर पड़ती है ।

श्रीवत्स—हाय ! चिंता ! विदा ! अगले जन्म.........

(चिंता श्रीवत्स का शब्द पहचानकर तुरंत अपना तकिया नीचे फेंक देती है । श्रीवत्स तकिया पकड़कर तैरने लगते हैं ।

चिंता—ओह ! मेरे प्राणनाथ यहाँ थे और मैं उनके दर्शनों से भी वंचित रही !.........

(तकिया नीचे गिरा देखकर नाव का स्वामी क्रोध दिखाता है ।)

नाव का स्वामी—देखो, चुड़ैल ने उसे तैरने का साधन पूरा कर दिया । इससे अच्छी तरह समझता हूँ । (चिंता के पास जाकर डाँटते हुए) क्यों ! यहाँ खड़ी-खड़ी क्या कर रही हो ? यही तुम्हारा सतीत्व धर्म है कि पर-पुरुष की ओर झाँका करो । हत् ! धिक्कार है तुम्हें !

चिंता—तुम क्या जानो ? यही मेरे इष्ट देव हैं । यही मेरे स्वामी हैं । मैं इनकी चरण-सेविका हूँ । (नीचे श्रीवत्स की ओर झाँककर) ठहरिये, प्राणाधार ! आती हूँ !

(चिंता नदी में कूदने लगती है, नाव का स्वामी चुटिया से पकड़ लेता है ।)

नाव का स्वामी—(चुटिया से पीछे खींचते हुए) चल, यहाँ बैठ । (चिंता गिर पड़ती है । एक माँझी को बुलाकर) रस्सी लेकर इसके हाथ-पैर बाँध दो ! देखो, कहीं यह नदी में न कूद पड़े ।

माँझी—सेठ जी ! जाती है गंगा मैया की गोद में तो जाने दो ।

नाव का स्वामी—ओ मूर्ख ! नाव फिर फँस गई तब ?

माँझी—(नाक पर अँगुलियाँ रखते हुए) इसके शरीर पर भयंकर कोढ़ हो रहा है, इसे छूना भी ठीक नहीं। पास में खड़े रहना भी हानिकारक होगा ।

नाव का स्वामी—(चिढ़कर) अरे ! अपनी कर्म गति से सब कुछ होता है। रोग ऐसे ही किसी को ग्रसने नहीं दौड़ते। जल्दी कर, बाँध दे हाथ पैर इसके ।

माँझी—जो आज्ञा ।

(चिंता के कमरे में जाकर माँझी डरता-डरता चिंता के पास खड़ा हो जाता है ।)

चिंता—(हाथ में पैने लोहे का टुकड़ा पकड़े हुए हैं और कुछ कह रही हैं) ठीक तरह स्वामी के दर्शन भी न कर पाई थी कि इस दुष्ट ने चुटिया से खींच कर पीछे गिरा दिया। आ, मुए, आ, तुझ पर ही अपना क्रोध शांत करूँ ।

(पटाक्षेप)

पाँचवाँ अंक

पहला दृश्य

स्थान—सौतिपुर का राज-उद्यान

समय—प्रातःकाल

(उद्यान की अपूर्व शोभा हो रही है। नाना वर्णों के फूल खिल रहे हैं, इधर-उधर जलाशय बन रहे हैं। कमल के फूलों की अद्‌भुत शोभा मन को मोह लेती है। जलाशयों के तटों पर सफेद संगमरमर के आसन बने हैं, और उन पर रंगीन पत्थरों का काम हो रहा है श्रीवत्स उद्यान के एक ओर आसन पर सो रहे हैं। किसी के गाने का शब्द सुनाई देता है)

सजनि, हिंडोले पर झूलो !
सावन की घड़ियाँ मतवाली,

(एक स्त्री झूला झूलते हुए गा रही दिखाई देती है।)

घिर आई घन-माला काली,
तुम उदास क्यों बैठी, आली !
जग के सब दुख-सुख भूलो,
सजनि, हिंडोले पर झूलो।

श्रीवत्स—(गाने का शब्द सुनकर आँख खोलते हुए) ओह ! दिन निकल आया। मैं कहाँ आ पहुँचा ? (अँगड़ाई लेते हुए उठ-खड़े होते हैं।)

(गाने का शब्द सुनाई देता है)

सजनि, हिंडोले पर झूलो......

श्रीवत्स—(गाना सुनकर) यह कौन गा रहा है ? स्वर तो किसी स्त्री का जान पड़ता है। यह स्त्री कौन होगी ? यह उद्यान किसका है ? यह नगर कौन-सा है ? यहाँ राज्य किसका है ? (गाने वाली स्त्री को देखकर) हाँ, इससे सब वृत्तांत विदित हो जायगा ? इसके पास जाता हूँ। (बढ़ते हैं)

(गाने वाली स्त्री श्रीवत्स को आता देखकर विस्मित हो जाती है और झूले से उतर पड़ती है।)

स्त्री—(धीरे से) यह पुरुष कौन है ? यहाँ कैसे आया ? (ज़रा ध्यान से देखकर) मुँह पर कितना तेज चमक रहा है ! रंग-रूप से कोई राजकुमार जान पड़ता है, वेश-भूषा से अभागा। इसी सज्जन के आने से यह उद्यान हरा-भरा हो गया है। पूछूँ, नाम-धाम क्या है। (आगे बढ़कर, श्रीवत्स से) आपका आना कहाँ से हुआ ? आपके नाम में कौन-से अक्षर शोभा पाते हैं ? यहाँ पधारना किस कारण हुआ ?

श्रीवत्स—मैं एक दुखिया हूँ। दुःख का मारा भटक रहा हूँ। मेरे नाम-धाम से क्या ?

स्त्री—महाशय ! दुखिया तो सारा संसार है। राजा से लेकर रंक तक सब दुःख से ग्रस्त हैं। आप अपना दुःख कहिये !

श्रीवत्स—कुछ सुवर्ण लेकर मैं व्यापार करने चला था। मार्ग में नाव के स्वामी ने मुझसे छल किया।

स्त्री—छल क्या ?

श्रीवत्स—मैं सो रहा था, मुझ सोये को ही उठवाकर नदी की धारा में फेंक दिया। जीवन-लीला शेष थी, सो किसी प्रकार यहाँ पहुँच गया हूँ। अब आप बतायें कि यह राज्य किसका है ? क्या नाम है ? आप कौन हैं ?

स्त्री—मैं राजकुमारी भद्रा की मालिन हूँ। यह सौतिपुर का राज्य है। इंद्र-तुल्य बाहु देव यहाँ के राजा हैं।

श्रीवत्स—(सहर्ष) अच्छा, यह सौतिपुर राज्य है !

मालिन—जी हाँ। आप अपना वृत्तांत बतायें कि आप कौन हैं। आपके मुख पर अनूठा तेज चमक रहा है। राजकुमार की सी आकृति है ? कहिये, आप कौन से देश पर राज्य करते हैं ?

श्रीवत्स—मालिन ! और मैं क्या कहूँ ? जो कह दिया है वही इस समय पर्याप्त है।

मालिन—महानुभाव ! मेरा उद्यान कल रात तक सूखा पड़ा था, आज सवेरा होते ही फल-फूल से भरपूर हो रहा है, लताएँ फूलों के गहनों से सज रही हैं। आपके पधारने से ही इस उद्यान की अनूठी छटा हो रही है। आप अवश्य कोई असाधारण व्यक्ति हैं।

श्रीवत्स—कभी था, अब कुछ नहीं हूँ।

मालिन—(साश्चर्य) यह कैसे ?

श्रीवत्स—मुझे उन सब बातों को, हाँ, एक बात को छोड़कर भूल जाने दो।

मालिन—(अधिक विस्मय से) यह क्या पहेली है ! सब बातें क्या और एक बात क्या ?

श्रीवत्स—अभी कुछ नहीं बताऊँगा। तुम बताओ कि इतने फूल किसलिए इकट्ठे कर रही हो ?

मालिन—मैं राजकुमारी भद्रा के लिए ये फूल ले जाऊँगी।

श्रीवत्स—वे इतने फूल क्या करेंगी ?

मालिन—वे हर दिन पार्वती की पूजा किया करती हैं, मैं उन्हें फूल और माला हर दिन दिया करती हूँ।

श्रीवत्स—राजकुमारी भद्रा को पार्वती जी की आराधना से क्या प्रयोजन ? उन्हें सुख-ऐश्वर्य की क्या न्यूनता ?

मालिन—महाशय ! आप ठीक कहते हैं। परंतु आपसे क्या कहूँ ?

श्रीवत्स—इसमें छिपाने की क्या बात ?

मालिन—आप कन्याओं की बातों को क्या समझें ?

श्रीवत्स—अच्छा, अपने मनोवांछित वर के लिए प्रार्थना करती होंगी !

मालिन—(मुसकराकर) हाँ, राजकुमारी इसीलिए पार्वती जी की पूजा कर रही हैं।

श्रीवत्स—(कुतूहल से) तो उनके अभीष्ट वर कौन हैं ? वे महानुभाव कैसे होंगे जिनके लिए वे अभी से अपने आपको कष्ट में डाल रही हैं ?

मालिन—यह मैं नहीं जानती, कोई नहीं जानता। राजकुमारी ने अपनी सखियों से भी नहीं कहा।

श्रीवत्स—तो राजकुमारी ने अपना भेद बड़ा गुप्त रखा है।

मालिन—अच्छा, चलूँ। बहुत विलंब हो गया। (सोचकर) अरे रे! अभी माला गूँथी ही नहीं।

श्रीवत्स—लाओ, मैं माला गूँथ दूँ।

मालिन—न, महात्मन्! यह काम आपके अनुकूल नहीं।

श्रीवत्स—नहीं, आज मेरी गूँथी हुई माला ले जाओ। मैं एक नये ढंग की माला गूँथ दूँगा। राजकुमारी अवश्य प्रसन्न होंगी।

मालिन—आप नहीं मानते। अच्छा, गूँथिये, यह रहा सुई-डोरा। मैं उतनी देर और फूल चुन लेती हूँ।

(श्रीवत्स माला गूँथने लगते हैं। मालिन फूल चुनती हुई साथ में गाती जाती है और कुछ दूर चली जाती है।)

कलियो, तुम क्यों मुसकाती हो?
भौंरे लोट-लोट जाते हैं,
कानों में कुछ कह जाते हैं,
मन में मिसरी भर जाते हैं,
इसीलिए क्या सुख पाती हो?
कलियो, क्यों तुम मुसकाती हो?

(मालिन फूल चुनती हुई श्रीवत्स के पास पहुँच जाती है।)

श्रीवत्स—(हाथ में माला लेकर) लो, यह ले जाओ। मेरे साथ बातचीत करने से जो विलंब हुआ, उसके बदले पुरस्कार पाओगी। जाओ कल्याण हो। मैं भी जाता हूँ।

मालिन—(नम्र भाव से) कृपानिधान ! आप कुछ दिन मेरा ही आतिथ्य स्वीकार करें। अपनी चरण-धूलि से मेरी कुटिया को पवित्र करें।

श्रीवत्स—मेरा यहाँ रहना उचित नहीं। मुझे जाने दो।

मालिन—महानुभाव ! क्या आप जैसे अतिथि हम जैसों के घर ठहरने में अपना अपमान समझते हैं ? तनिक भीलनी के बेरों का भी भोग लगाइये।

श्रीवत्स—(विवश होकर) अच्छा, जैसी इच्छा।

मालिन—(सहर्ष) आइये। [दोनों का प्रस्थान

(पट-परिवर्तन)

दूसरा दृश्य

स्थान—सौतिपुर का मंदिर

समय—सूर्योदय

(राजकुमारी भद्रा गौरी-पार्वती की स्तुति करती दिखाई देती है।

[गान]

मनवांछित फल देने वाली,
गौरी भर दो मन की प्याली !
भर दो उपवन में हरियाली,
फूले इसकी डाला-डाली।

डाल-डाल पर कोयल काली
कूके पंचम में मतवाली,
अब कल्याणी बनो कराली,
भरो हृदय की थाली खाली !

(आकाश-वाणी होती है)

" पुत्री भद्रा ! तुम्हारी भक्ति और श्रद्धा से प्रसन्न हूँ। तेरा वर आज यहाँ पहुँच गया है। "

भद्रा—(सहर्ष) माता गौरी ! आप प्रसन्न हैं, यह जानकर मुझे अपार हर्ष हुआ। परंतु कुछ शंका होती है। आज कई राजकुमार आये हैं, मैं उन्हें कैसे पहचानूँ ?

(फिर आकाशवाणी होती है)

" तुम्हारा वर दीन दशा में तुम्हारे राज-उद्यान में पहुँच गया है। उस पर घृणा न करना। "

भद्रा—[गम्भीरतापूर्वक] दीन दशा पर घृणा न करना ! यह क्या ? क्या मेरा वर राजकुमार नहीं। अथवा इसमें सोच-विचार कैसा ? जब देवी पार्वती मुझ पर प्रसन्न हैं, तो मेरा मनोवांछित वर वही होगा। [सहर्ष हाथ जोड़ कर] माता ! स्त्री का जीवन विचित्र है। उत्तम वर प्राप्त करके कन्या अपने जीवन को सफल समझती है। मुझे मनोवांछित वर प्रदानकर आप मेरा जीवन कृतकृत्य कर देंगी।

(थाल में से पूजा की सामग्री लेकर गौरी का पूजन करती है)

मनवांछित फल देने वाली
गौरी, भर दो मन की प्याली,
भर दो इस मन में हरियाली,
फूले इसकी डाली-डाली !

(पट-परिवर्तन)

तीसरा दृश्य

स्थान—सौतिपुर का राज-उद्यान

समय—प्रातःकाल

(फूल लिए हुए मालिन का प्रवेश)

मालिन—आज कितना अच्छा दिन है! नगरी के प्रत्येक नर-नारी का हृदय हर्ष के कारण फूल रहा है। विवाह शब्द ही ऐसा है कि सबको आनंद में डुबो देता है। परंतु...परंतु विवाह के समाप्त होते समय कन्या पक्ष के लोगों का हृदय भारी होने लगता है। कन्या से पहला विछोह पास आता देख उसके माता-पिता, सखियाँ तथा दूसरे नातेदारों की आँखें डबडबा आती हैं। मैं भी आज राजकुमारी के स्वयंवर के लिए फूल तो चुन लाई हूँ, परंतु हृदय उसके विछोह के विचार से बैठा जा रहा है। राजकुमारी भद्रा अब ससुराल चली जायगी। भद्रा सचमुच भद्रा है। इसने सब के हृदय में घर कर रखा है। परंतु क्या किया जाय? कन्या पराया धन है। (किसी के बोलने का शब्द सुनकर चौंककर) अरे! राजकुमारी भद्रा सखियों के साथ इधर ही आ रही हैं। मैं भी उधर चलती हूँ। (आगे बढ़ती है)

(दृश्य-परिवर्तन)

(राजकुमारी भद्रा सखियों सहित दिखाई देती हैं)

पहली—सखी भद्रा! इतनी उदास मत हो। ससुराल तो सभी जाती हैं।

दूसरी—हाँ, उदासी का क्या काम ? एक घर के रहते दूसरा घर रहने को बन जाता है ।

तीसरी—एक माता-पिता के रहते दूसरे माता-पिता और बन जाते हैं ।

चौथी—मन बहलाने को एक और वस्तु मिल जाती है ।

(सब हँस पड़ती हैं, भद्रा मौन रहती है ।)

दूसरी—(भद्रा की ओर देख कर) भद्रा है तो चुप, परंतु होंठ बता रहे हैं कि.........

भद्रा—तुम्हारा सिर फिर गया है ।

पहली—सिर फिर गया है ? (दूसरी सखी का सिर देखकर) सिर फिर गया है। फिरा तो दिखाई नहीं देता। (सब हँस पड़ती हैं ।)

चौथी—अब हँसो हमारी सखी भद्रा !

दूसरी—हँसी दबाना सीख रही थी ।

भद्रा—(मुसकरा कर) तुम बड़ी नटखट होती जा रही हो ।

दूसरी—अब देखना तुम क्या-क्या बन जाओगी । मैं भला क्या हूँ ?

(सब सखियाँ हँस पड़ती हैं ।)

मालिन—(पास पहुँचकर राजकुमारी को प्रणाम करके) राज-कुमारी ! आपके लिए फूल लाई हूँ ।

दूसरी—फूल ! आज इन्हें एक विशेष फूल चाहिए ।

मालिन—विशेष फूल ! वह कौन-सा फूल होता है ?

दूसरी—एक फूल होता है। क्या तू नहीं जानती ?

मालिन—(सविस्मय) मैं तो नहीं जानती।

दूसरी—वह ऐसा फूल होता है जिसका आकार पुरुष के मुख जैसा होता है। उसे पुरुष-मुखी फूल कहते हैं।

मालिन—(सविस्मय) पुरुष-मुखी फूल ! एक सूर्य-मुखी फूल तो होता है। पुरुष-मुखी फूल कैसा ?

दूसरी—अरी मूढ़ ! ऐसा फूल जिसकी आँखें कमल जैसी हों, जिसका मुँह कमल जैसा हो और...जो सारा गुलाब के फूल जैसा हो, और...और......

(सब हँसती हैं, भद्रा एक ओर जाने लगती है।)

तीसरी—(हाथ पकड़कर) अभी से अलग होने लगीं ?

मालिन—(आगे बढ़कर) यह फूल बहुत सुंदर है। लीजिए।

भद्रा—(रुककर मालिन से) मुझे फूल नहीं चाहिए, ले जाओ।

चौथी—मालिन ! तुम नहीं समझीं। राजकुमारी आज स्वयंवर के लिए फूल इकट्ठे करवा रही हैं।

(सब हँसती हैं, भद्रा भी मुसकराती है।)

मालिन—वाह ! फूलों की क्या कमी है ? हमारी राजकुमारी के लिए और मनों फूल आ सकते हैं। (यह कहकर वह फूल उस पर फेंक देती है।)

दूसरी—अहह ! आज स्वयंवर है, पुष्पवर्षा अभी से होने लगी।

(सब हँसती हैं।)

पहली—अरे ! तुम सभी राजकुमारी को बना रही हो। यह ठीक नहीं।

दूसरी—हम क्या बना रही हैं ? यह आप ही वधू बनने जा रही हैं, स्वयंवर रचा रही हैं।

(सब हँसती हैं। भद्रा एक ओर मुँह करके खड़ी हो जाती है।
सामने से श्रीवत्स अपने ध्यान में मग्न आते
दिखाई देते हैं।)

भद्रा—(चौंककर) यह पुरुष कौन है ?

(सब उधर देखती हैं।)

मालिन—यह मेरा पाहुना है।

भद्रा—(विस्मय से) यह तुम्हारा पाहुना ! यह कैसे ?

तीसरी—इसमें विस्मय कैसा ? पाहुने जैसे होते हैं !

दूसरी—तुम नहीं समझो री ! रंग-रूप से तो ये कोई महा-पुरुष दिखाई देते हैं। इससे सखी भद्रा ने ऐसा कहा है।

भद्रा—(कुछ सोचने लगती है) चलो, अब लौट चलें।

तीसरी—स्त्रियों को पर-पुरुष का दर्शन करना निषेध है।

दूसरी—अरी मूर्ख ! अभी स्व-पुरुष और पर-पुरुष का क्या भेद ?

पहली और चौथी—हाँ, ठीक कहा, ठीक कहा।

(सब हँसती हैं। हँसी सुनकर श्रीवत्स की दृष्टि इधर पड़ती
है। इन्हें देखकर वे दूसरी ओर चले जाते हैं।)

तीसरी—अरी मालिन ! इन्हें पहले तो कभी देखा नहीं। यह तुम्हारे पाहुने कब आये हैं ?

मालिन—कल ही आये हैं ?

दूसरी—कहाँ से आये हैं ?

मालिन—यह तो मैं नहीं जानती।

चौथी—वाह ! वाह ! तुम्हारा पाहुना और न पता न ठिकाना।

मालिन—कोई दुखिया हैं। किसी ने इन्हें नदी में बहा दिया था, तैरते-तैरते यहाँ नदी-तट पर आ पहुँचे।

पहली—और तुमने अपने पास ठहरा लिया।

मालिन—जी, हाँ, बड़े भाग्यवान् हैं।

दूसरी—सो कैसे ?

मालिन—इनके वहाँ पधारने से उद्यान की शोभा दुगनी हो गई है। आज बहुत फूल उतरे हैं।

दूसरी—तो सखी भद्रा! गौरी-पार्वती ने यही वर तुम्हारे लिए भेजा है।

भद्रा—हाँ, यही आदेश किया था।

दूसरी—तभी तो आज इस उद्यान में विशेष फूल खिला दिखाई दे गया।

(सब हँसती हैं, भद्रा झेंप जाती है)

भद्रा—हटो, मैं नहीं बोलती।

सखियाँ—अभी से बोलना बंद कर रही हो, विवाह बाद क्या होगा ? (भद्रा एक ओर जाने लगती है। हँसती-हँसती सब सखियाँ और मालिन उसके पीछे-पीछे जाने लगती हैं।) [प्रस्थान

(पट-परिवर्तन)

चौथा दृश्य

स्थान—मालिन की कुटिया

समय—दोपहर बाद

(मालिन और श्रीवत्स बैठे बातचीत कर रहे हैं ।)

मालिन—आज आप स्वयंवर सभा में मेरे साथ चलें।

श्रीवत्स—मैं वहाँ जाकर क्या करूँगा ? मेरी दीन अवस्था मुझे वहाँ लज्जित करेगी ।

मालिन—आप ठीक कहते हैं, परंतु मेरी इच्छा है कि मैं आपको स्वयंवर में अवश्य ले जाऊँ ! मेरे मन में विचार उठता है कि आपको ही राजकुमारी भद्रा वर लेंगी ।

श्रीवत्स—(आश्चर्य से) यह क्यों ?

मालिन—वाह ! इसमें आश्चर्य कैसा ? आप के समान रूपवान्, तेजस्वी और गुण-धाम और कौन होगा ?

श्रीवत्स—इस संसार में गुणों की कोई सीमा नहीं । एक से एक बढ़-चढ़कर होता है ।

मालिन—मेरे इस विचार के लिए कुछ कारण है ।

श्रीवत्स—वह क्या ?

मालिन—आज राजकुमारी अपने योग्य और मनोवांछित वर की प्राप्ति के लिए पार्वती देवी का पूजन कर रही थीं । राजकुमारी से पार्वती देवी ने प्रकट होकर कहा कि तुम्हारा मनोवांछित वर इस नगर में पहुँच चुका है। उसकी दीन दशा

देखकर घृणा न करना। हो न हो आप ही उसके मनोवांछित वर हैं।

श्रीवत्स—मैं तो विवाह कर चुका हूँ। हाँ, (आह भरकर) दुर्भाग्य से इस समय हम दोनों पृथक् हो रहे हैं। मैं जानता हूँ कि वह जीवित है। मैं और विवाह न करूँगा।

मालिन—और यदि राजकुमारी जयमाला आपके गले में डाल दे ?

श्रीवत्स—मैं पहले ही उससे क्षमा माँग लूँगा।

मालिन—मैं आपको स्वयंम्वर में पहुँचाये विना न मानूँगी। मैं आपके लिए कुछ तैयारी करके अभी आती हूँ।

[प्रस्थान

(श्रीवत्स को एक आकाशवाणी सुनाई देती है)

" श्रीवत्स ! भद्रा को स्वीकार करने में संकोच मत करो ! "

श्रीवत्स—यह क्या ? लक्ष्मी देवी कहती हैं कि उसे स्वीकार कर लेना। अच्छा, विवश हूँ। देवी की आज्ञा उल्लंघन नहीं कर सकता। पहले आज्ञा उल्लंघन की थी तो नदी में डूबने लगा था।

मालिन—(प्रवेश करके सहर्ष) आइये, स्वयंवर में चलें।

श्रीवत्स—अच्छा, विवश हूँ। चलो।

[दोनों का प्रस्थान

(पट-परिवर्तन)

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—स्वयंवर-मंडप

समय—तीसरा पहर

(सोतिपुर-नरेश तथा मंत्री, अधिकारी तथा धनी-मानी बैठे हैं। उनके सामने घेरे में कई देशों के राजा तथा राजकुमार विराज रहे हैं। मंडप के बाहर बृहत् तोरण पर कदंब वृक्ष की छाया तड़ रही है। चारों ओर दर्शक-जनों की भीड़ लग रही है।)

एक—(धीरे से अपने साथी से) राजकुमारी आ गई, देखो, राजकुमार कैसे उतावले हो रहे हैं। शरीर-मात्र इधर रह गये हैं, मन उधर उड़ गये हैं।

दूसरा—कन्या के लिए यह समय बड़े सोच-विचार का होता है। इतने राजाओं में से केवल दर्शन-मात्र से वर निश्चय करना बड़ी बुद्धिमत्ता का काम है।

पहला—बुद्धिमत्ता भला इतनी आयु की कन्या में क्या होगी? बड़े-बड़े लोग चकरा जायँ। बस, भाग्य की बात कहो। जहाँ भगवान ने संबंध जोड़ा है वहीं जुड़ जाता है।

दूसरा—हाँ, भगवान् की इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं हो सकता।

बाहुदेव—(आगे बढ़कर दोनों ओर बैठे राजवृंद की ओर देखकर) मान्यवर महानुभावो! आज इस शुभ अवसर पर आपने यहाँ

पधारकर मुझ पर बड़ा अनुग्रह किया है, मैं आपको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। इस समय मुझे कुछ अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। आप सब मेरे अतिथि हैं और पूज्य हैं। परंतु मेरी कन्या का स्वामी वही होगा जिसको राजकुमारी भद्रा जयमाला अर्पण करेगी। अतएव इस सम्मान का प्राप्त होना अथवा न होना राजकुमारी के निर्णय पर निर्भर है, मैं विवश हूँ, क्षमा-प्रार्थी हूँ। (राज-पुरोहित से) पुरोहित जी ! अब राजकुमारी को बुलाकर कार्य आरंभ कीजिये।

(पुरोहित का प्रस्थान तथा सखियां सहित भद्रा को लिये पुनः प्रवेश। राजकुमारी को देखकर राजकुमार आपस में धीरे-धीरे कुछ बातें करते दिखाई देते हैं।)

बाहुदेव—पुत्री ! आगे बढ़ो और सुयोग्य वर को वरो।

(भद्रा हाथ जोड़कर सिर झुकाती है। हाथ में थाल लिये एक सखी भद्रा के साथ आ खड़ी होती है।)

भद्रा—(इधर- उधर दृष्टि डालकर धीरे से) किधर चलूँ ?

सखी—इधर आओ।

(सखी एक ओर बढ़ती है। भद्रा भी उधर जाती है। पीछे और सखियाँ चलती हैं। एक स्थान पर भद्रा रुक जाती है। उसे रुकी देखकर भाट कहता है।)

भाट—ये कलिंग-नरेश हैं। बाहुबल में आप महेंद्र पर्वत की समता रखते हैं। आप महेंद्र पर्वत तथा समुद्र के अधिपति हैं। शत्रुओं के नाश के लिए गज-रूपी महेंद्र पर्वत ही आपकी सेनाओं का अग्र-भाग बनता है। आप धनुषधारियों में श्रेष्ठ हैं। आपकी

भुजाओं पर धनुष की डोरी से दो सूखे हुए घाव ऐसे हो रहे हैं मानो आपके बंदी किये गये शत्रुओं की स्त्रियों के काजल सहित अश्रुधारा से दो मार्ग बने हैं। आपका राज-प्रासाद समुद्र तट पर ही है। अतएव प्रातःकालीन मंगल-वाद्यों का कार्य समुद्र के ही ऊपर है।

(राजकुमारी दो-तीन राजकुमार छोड़कर आगे बढ़कर रुकती है और इधर-उधर खोज भरी आँखों से किसी को ढूँढ़ती जान पड़ती है।)

भाट—ये नागपुर के नरेश हैं! इस राज-वंश पर महर्षि अगस्त्य बड़े दयालु हैं। घमंडी लंकापति को भी नागपुर राज्य द्वारा जन-स्थान पर आक्रमण का भय घेरे रहता था। दक्षिण-भारत के यह एक-मात्र अधिपति हैं। इन्हें वरने से रत्नादि सहित सागरों के पति की तुम धर्मपत्नी बनोगी। आपकी आकृति नील-वर्ण के समान है। तुम्हारा सूक्ष्म शरीर गोरोचन के रंगवाला है। तुम दोनों के मेल से एक दूसरे की शोभा ऐसी बढ़ेगी जैसे बिजली से बादल की शोभा बढ़ती है। इनके साथ तुम मलय-पर्वत के सुंदर दृश्यों द्वारा मनोविनोद करना।

(राजकुमारी कुछ राजकुमारों को छोड़कर आगे बढ़कर रुकती है।)

भाट—ये कोशल के राजकुमार हैं। इन्हीं के पूर्वज पुरंजय हुए हैं जिन्होंने इंद्र को देवासुर संग्राम में बैल के रूप में अपना वाहन बनाया था। बैल के ककुद् पर बैठने से उनका नाम ककुत्स्थ पड़ा। इस राजवंश की कीर्ति पर्वत-शिखरों पर आरूढ़ हो गई है

और नीचे समुद्र में प्रवेश करके नाग-लोक में फैलकर स्वर्ग पहुँच गई है।

(राजकुमारी कुछ राजकुमारों को छोड़कर आगे बढ़कर रुकती है।)

भाट—ये मथुरा के राजकुमार हैं। इन्हीं के देश में श्रीकृष्ण ने जन्म ग्रहण किया था। उसी देश में चैत्र-रथ वन के तुल्य वृंदावन है। वहाँ गोवर्धन पर्वत पर अनूठे मयूर-नृत्य दृष्टिगोचर होते हैं।

(राजकुमारी तोरण के पास पहुँचती है, बाहर कदंब वृक्ष के नीचे उन्नत-ललाट तथा तेजस्वी शरीरधारी श्रीवत्स को बैठे देखकर जयमाला उनके गले में डाल देती है। मंडप में दर्शकों की बातचीत के कारण कोलाहल मच जाता है।)

एक दर्शक—राजकुमारी की इच्छा अनूठी है।

दूसरा दर्शक—देखो, राजकुमार कैसे आग-बबूला हो रहे हैं।

कोशल-नरेश—अनर्थ हो गया! अंधेर हो गया! हमें यहाँ बुलाकर हमारा निरादर किया गया है।

अवन्ति-कुमार—राजा बाहुदेव ने इस धृष्ट कन्या द्वारा हमारा घोर अपमान कराया है।

बाहुदेव—(सक्रोध सिंहासन से उतरकर) भद्रा! तुमने मेरे उज्ज्वल कुल पर लांछन लगा दिया। तेरी बुद्धि क्यों हरी गई?

मगध-नरेश—सौतिपुर-नरेश! आपके प्रति मेरी प्रीति है,

परंतु आपको यदि अपनी कन्या के भावों का ज्ञान था तो राजवृंद को न बुलाकर भिखारियों को बुलाना था।

वाहुदेव—उपस्थित राजवृंद! आपका मेरी ओर से कुछ निरादर नहीं हुआ। मेरी कन्या ने, मूढ़मति कन्या ने, आपके साथ-साथ मुझे भी लज्जित कर दिया है।

(कोलाहल अधिक होने लगता है।)

[सक्रोध राजवृंद का प्रस्थान

(सखियों सहित भद्रा पीछे लौटती है। राजा वाहुदेव के पास पहुँचती है। दर्शकजन भी धीरे धीरे तितर-बितर होने लगते हैं)

राजा वाहुदेव—(डाँटते हुए) भद्रा! आज तुम्हें क्या हो गया? बुद्धि भ्रष्ट क्यों हो गई? इतने राजा तथा राजकुमारों को छोड़कर एक भिखारी को अपना जीवन अर्पण कर दिया! हत, धिक्कार है तुम्हें!

भद्रा—पिता जी! आप क्रोध न करें। मेरे आराध्य देव कोई ऐसे-वैसे नहीं। उनसे आपका गौरव बढ़ेगा। और.....

वाहुदेव—(बिना सुने) भाड़ में गया सब गौरव, और कुएँ में गईं तुम! मेरा तुमसे कोई संबंध नहीं? यदि मेरा वचन मानना है तो इस भिखारी को त्याग कर किसी योग्य वर को चुनो।

भद्रा—(नम्रतापूर्वक) पिता जी! आप सरीखे पिता की कन्या होकर, सती शिरोमणि माता के गर्भ से उत्पन्न होकर, क्या मैं और वर चुन सकती हूँ? कहा है :—

दीर्घायुरथवाल्पायुः सगुणो निर्गुणोऽपि वा।
सकृद् वृत्तो मया भर्त्ता न द्वितीयं वृणोम्यहम् ॥

सतीत्व धर्म का अपमान करना स्त्रियों के लिए घोर पाप है! मैं अपना जीवन त्याग दूँगी, परंतु अपना निश्चय न बदलूँगी।

बाहुदेव—(सक्रोध प्रधान मंत्री से) तो आप इस अभागिन का विवाह उस भिखारी के साथ साधारण रीति से कर दें और दोनों को नगर से निर्वासित कर दें। मैं ऐसी पुत्री और ऐसे वर का मुँह नहीं देखूँगा।

प्रधान मंत्री—जो आज्ञा।

[बाहुदेव का सक्रोध प्रस्थान

प्रधान मंत्री—राजकुमारी! मैं परवश हूँ, मेरे लिए क्या आज्ञा है?

भद्रा—आप सोच न करें, पिता जी की आज्ञा का पालन करें। मेरे लिए अपने कर्तव्य-पथ पर चलना ही श्रेयस्कर है।

प्रधान मंत्री—तो आइये।

(दोनों बढ़कर श्रीवत्स के पास पहुँचते हैं।)

प्रधान मंत्री—आइये, वर महोदय! आइये।

श्रीवत्स—विचित्र समस्या है! अच्छा।

[तीनों का प्रस्थान

(पट-परिवर्तन)

छठा दृश्य

स्थान—नगर के बाहर श्रीवत्स का स्थान

समय—मध्याह्न के पूर्व

(श्रीवत्स किसी चिंता में लीन दिखाई देते हैं।)

श्रीवत्स—(गणना करते हुए) बारह वर्ष तक शनि देव के कोप की अवधि थी। आज बारह वर्ष व्यतीत हो गये। शनिदेव का क्रोध अब जाता रहेगा। अब चिंता के खोजने का फिर यत्न करना चाहिए। बेचारी चिंता को पल-पल काटना भारी हो रहा होगा। जब वह भद्रा को देखेगी तब वह क्या कहेगी ? मैं क्या करता ? लक्ष्मी देवी की आज्ञा का उल्लंघन कैसे करता ? भद्रा ने मेरे लिए बड़ा त्याग किया है। मैं उसके सुख के लिए कुछ प्रयत्न नहीं कर सकता। नगर में होता तो कुछ काम करके जीविका प्राप्त कर लेता, परंतु नगर-प्रवेश निषिद्ध है। देखें......

(भद्रा का प्रवेश)

भद्रा—(श्रीवत्स की चिंतामुद्रा देखकर) नाथ! आज आप चिंतित क्यों हो रहे हैं ? क्या मुझसे कुछ अपराध हुआ है ?

श्रीवत्स—भला तुमसे अपराध क्या होता ? मैं यह सोच रहा था कि तुम राज-सुख-ऐश्वर्य में पली हो, लाड़-चाव से तुम्हारा पालन हुआ है, परंतु मैं तुम्हारे लिए कुछ नहीं कर पाता।

भद्रा—नाथ ! मुझे तो कोई दुःख नहीं, किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं। आपको जिस वस्तु की इच्छा हो, वह कहिये,

मैं अपनी माता जी को संदेश भिजवाकर वह इच्छा पूरी कर दूँगी। पिता जी चाहे रुष्ट हो रहे हैं, परंतु माता का-सा स्नेह संसार में कहीं नहीं मिलता।

श्रीवत्स—ठीक है, माता का स्नेह अनुपम कहा है, परंतु वे भी विवश होंगी।

भद्रा—यदि आपकी इच्छा हो तो मैं माता जी द्वारा पिताजी को कहलवाऊँ कि आपको किसी राजकीय कार्य पर नियुक्त कर दें। जहाँ इतने लोग राजकीय कार्यों पर नियुक्त हैं, वहाँ आपको भी, अपनी कन्या के पति को भी, वे किसी स्थान पर नियत कर दें तो कौन-सी बड़ी बात है?

श्रीवत्स—पिता जी अपने वचन के पक्के हैं। वे नगर में हमें जाने नहीं देंगे। यदि राजकीय कार्य पर नियत करेंगे, तो नगर में निवास भी स्वीकार करना होगा। (सोचकर) यहाँ नदी पास है। मुझे इस नदी पर नावों से कर एकत्र करने का ही काम दे दें। इस प्रकार उनका वचन भी पूरा रहेगा और हमारा काम भी बन जायगा।

भद्रा—यह काम आपके योग्य नहीं।

श्रीवत्स—इस समय और क्या हो सकता है? मैं इस काम से नीच और तुच्छ काम कर चुका हूँ। चंदन की लकड़ी काटकर बेचता रहा हूँ। उससे तो यह काम बुरा नहीं। और......

भद्रा—हाँ, कहिये, चुप क्यों हो गये?

श्रीवत्स—अथवा इसी प्रकार कुछ दिन और भी व्यतीत हो जायँगे। मुझे आशा है कि मेरे दिन शीघ्र ही फिरेंगे। दुःख सुख में बदलने लगेगा, फिर से भाग्योदय होगा।

भद्रा—यह कैसे ? क्या कोई देव-वाणी हुई है ?

श्रीवत्स—नहीं, देव-वाणी नहीं। माता लक्ष्मी ने कहा था कि शनिदेव के क्रोध की अवधि बारह वर्ष है। मैंने गिना है कि आज यह अवधि व्यतीत हो गई है।

भद्रा—(प्रसन्न होकर) तो फिर मेरे पिताजी का क्रोध भी कम होने लगेगा। प्रिय बहिन चिंतादेवी का भी शीघ्र साक्षात् होगा।

श्रीवत्स—देखें, वह शुभ अवसर कब होता है ? आशा है कि माता लक्ष्मी हमारे संयोग का कोई शीघ्र उपाय करेंगी। वे हम पर बड़ा स्नेह रखती हैं।

भद्रा—मेरी यही मनोकामना है कि प्रिय बहिन चिंतादेवी के दर्शन शीघ्र हों और मुझे उनकी भी सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हो।

(गीत का शब्द सुनाई देता है)

मन रे चिंता करना छोड़ !
प्रभु से स्नेह लगाये जा तू ,

भद्रा— यह कौन गा रहा है ?

श्रीवत्स—कैसा मधुर गीत है ?

(महर्षि नारद का वीणा बजाते हुए प्रवेश। साथ में वे तान छेड़ रहे हैं।)

प्रभु के ही गुण गाये जा तू,
सेवा में सुख पाये जा तू,
मत माया से नाता जोड़ !
मन रे चिंता करना छोड़!

श्रीवत्स—(महर्षि को देखकर) अहा ! यह तो महर्षि नारद पधारे हैं।

(दोनों उठकर खड़े हो जाते हैं और आगे बढ़कर महर्षि का सत्कार करते हैं। नारद आशीर्वाद देते हैं।)

नारद—श्रीवत्स ! अब तुम्हारे संकट का समय कट गया। सती चिंता एक सेठ के चंगुल में फँस रही है।

भद्रा—वह कैसे ?

श्रीवत्स—आह ! उस अबला ने बड़ा दुःख पाया।

नारद—राजन् ! तनिक धीरज रखो। अब वह तुम्हें शीघ्र ही मिलेगी।

श्रीवत्स—वह कैसे ?

नारद—उसे सेठ ने नाव में बंदी बना रखा है। वह नाव इधर शीघ्र ही आने वाली है। तुम उसे तब पा सकोगे।

भद्रा—महर्षि ! नाव तो यहाँ प्रतिदिन कई आती हैं।

नारद—हाँ, पुत्री ! ठीक कहती हो, परंतु......परंतु यदि राजा के नावों का कर एकत्र करने का काम ले लें, तो सुविधा होगी। तब ये प्रत्येक नाव की देख-भाल कर सकेंगे।

श्रीवत्स—देवर्षि ! आपके आने से पहले यही चर्चा हो रही थी ।

नारद—बहुत ठीक । ऐसा ही करो । महाराज बाहुदेव का भी क्रोध अब शांत हो रहा है । वह यह पद आपको देना स्वीकार कर लेंगे । अच्छा, अब चलता हूँ ।

भद्रा—महर्षि ! आतिथ्य ग्रहण कर जाइएगा ।

नारद—पुत्री ! हमारे पैर में तो चक्कर है । कहीं अधिक देर ठहरने का स्वभाव ही नहीं ।

[" मन रे चिंता करना छोड़ " गाते हुए प्रस्थान

(पट-परिवर्तन)

सातवाँ दृश्य

स्थान—राजा बाहुदेव का मंत्रणा-गृह

समय—एक पहर बाद

(राजा बाहुदेव राजसिंहासन पर विराजमान हैं। सामने दो मंत्री बैठे हैं।)

प्रधान मंत्री—महाराज! सुना है कि नदी-तट का प्रधान रक्षक बड़ी सावधानी से काम कर रहा है। मेरा अनुमान है कि वह राज-कार्य में अवश्य अभ्यस्त है!

बाहुदेव—प्रधान मंत्री! मैं अचंभे में हूँ कि यह पुरुष कौन होगा? भद्रा की सखियाँ कहती हैं कि भद्रा ने यह वर देव-प्रेरणा से वरा है।

एक मंत्री—आकृति तो राजकुमारों की-सी है। परंतु बड़ा आश्चर्य है, यदि वह राजकुमार होता तो गुप्त क्यों रहता? इतना निरादर होने पर भी प्रकट क्यों नहीं हुआ?

दूसरा मंत्री—संभव है अपनी हीन दशा के कारण उसने अपना रहस्य प्रकट न किया हो। वीर-कुलीन पुरुषों के लिए लज्जा मृत्यु के समान है।

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल—(झुक कर प्रणाम करके) महाराज! नदी-तट के प्रधान रक्षक ने अपने दो कर्मचारियों के साथ एक सेठ को बंदी करके भेजा है। वे आपके दर्शन करना चाहते हैं।

वाहुदेव—उपस्थित करो।

[द्वारपाल का प्रस्थान

प्रधान मन्त्री—सेठ को बंदी करने का क्या कारण ?

वाहुदेव—कर बचाने के लिए धोखा दिया होगा।

(दो कर्मचारियों का बंदी सेठ सहित प्रवेश। अभिवादन के अनंतर)

एक कर्मचारी—महाराज ! प्रधान तट-रक्षक ने इस सेठ को बंदी करके भेजा है। इसकी नाव नदी-तट पर लगी थी। इसकी नाव पर चोरी का सोना मिला है।

वाहुदेव—(साश्चर्य) चोरी का सोना कैसे ?

सेठ—(प्रसन्न होकर दीन भाव से) महाराज ! मैं आपसे न्याय चाहता हूँ। आपके कर्मचारी ने मेरा सोना हर लिया है और मुझे बंदी कर लिया है। वह बड़ा लोभी है। सोने की चोरी ? भला किसका सोना ? चोरी का क्या प्रमाण ? आप धर्म-मूर्ति हैं। मेरा निर्णय कीजिये।

वाहुदेव—(प्रधान मंत्री से, धीरे से) यहाँ से किसी का सोना चोरी नहीं हुआ। फिर नदी-तट के रक्षक ने इसका सोना चोरी का कैसे ठहराया है ?

प्रधान मंत्री—(धीरे से) कदाचित् उस पर किसी राजकीय कोष की मुद्रा हो।

वाहुदेव—(धीरे से) तो यह भी संभव है कि किसी राजा ने अपने सोने का कुछ भाग वेच दिया हो।

प्रधान मंत्री—(धीरे से) हाँ, आपका विचार भी ठीक है। (कर्मचारी से उच्च स्वर से) नदी-तट के रक्षक ने कुछ और संदेश नहीं दिया ?

एक कर्मचारी—उन्होंने कहा है कि मेरा नगर-प्रवेश निषिद्ध है, अन्यथा मैं स्वयं आपके सम्मुख उपस्थित होकर सब बात स्पष्ट करता। अब जो आपकी आज्ञा हो, वैसा करूँ।

(प्रधान मंत्री राजा की ओर देखते हैं।)

बाहुदेव—(सोचकर) यह राजकार्य है। उनके उपस्थित होने में कोई दोष नहीं।

दूसरा कर्मचारी—जो आज्ञा। [प्रस्थान

सेठ—(कर्मचारी से ज़रा आगे बढ़कर) महाराज ! आप देखेंगे कि वह नीच दोषी प्रमाणित होगा। महाराज ! हम व्यापारी लोग हैं। यहाँ कोई वस्तु मोल ले ली, दूसरे स्थान पर जाकर बेच दी। वहाँ से कोई और वस्तु ले ली और तीसरे स्थान पर बेच दी। इसी प्रकार हम व्यापार करते फिरते हैं। ऐसा अंधेर कहीं नहीं देखा था। उस दुष्ट ने मेरा मान मिट्टी में मिला दिया !

बाहुदेव—सेठ ! धीरज रखो। अभी निर्णय हो जायगा। आपका सोना कितना है ?

सेठ—मेरे पास सोने की पचास ईंटें हैं, एक-एक ईंट में दो-दो ईंटें जुड़ी हुई हैं। अलग-अलग गिनकर सौ ईंटें समझिये।

बाहुदेव—आपने यह सोना कहाँ से मोल लिया।

सेठ—महाराज धर्मावतार ! हम व्यापारी लोग यह हिसाब नहीं रखते कि यह वस्तु कहाँ से ली और वह वस्तु कहाँ से ली। हमें तो लाभ से प्रयोजन है। जहाँ से कोई वस्तु सस्ती मिल गई, ले ली। जहाँ महँगी देखी, वहाँ बेच दी।

बाहुदेव—(कुछ क्रोध दिखाकर) किसी साधारण वस्तु के मोल लेने का चाहे स्मरण न रहे, परंतु स्वर्ण जैसी वस्तु के विषय में यह बात नहीं हो सकती। (डाँट कर) सच बताओ, तुम्हारे पास इस स्वर्ण को अपना बताने का क्या प्रमाण है ?

सेठ—महाराज ! हम लोगों की आँख की परख ही होती है जिससे हम अनेक वस्तुओं में मिली हुई भी अपनी वस्तु को पहचान लेते हैं, और मैं क्या प्रमाण दूँ ? (रोने-सा लगता है)

बाहुदेव—[प्रधान मंत्री से] अभी इसे बंदी-गृह में रखो। तट-रक्षक के आने पर बुला लेना। अब सभा विसर्जित होती है।

(पट-परिवर्तन)

आठवाँ दृश्य

स्थान—न्याय-सभा

समय—सायंकाल के पूर्व

(राजा वाहुदेव, प्रधान मन्त्री, न्याय-मंत्री आदि सभासद तथा अन्य सम्मानित जन यथा स्थान बैठे दिखाई देते हैं। बीच में सेठ, नदी-तट-रक्षक (श्रीवत्स) तथा कुछ राजकर्मचारी खड़े हैं)

वाहुदेव—तट-रक्षक ! चोरी का सोना कहाँ है और तुम्हारे पास उसे चोरी का ठहराने के लिए क्या प्रमाण है ?

तट-रक्षक—(सोने की गठरी राजा वाहुदेव के सामने रखवाकर) राजन् ! यह है चोरी का सोना। इसे चोरी का ठहराने के लिए मैं यही निवेदन करना चाहता हूँ कि यह सोना मेरा है।

सेठ—बिलकुल झूठ, सफेद झूठ। तुम्हारे पास इतना सोना कहाँ से आया ?

तट-रक्षक—देव ! यह सेठ एक भीषण नर-पिशाच है।

वाहुदेव—सो कैसे ?

तट-रक्षक—सुनिये, मैं पूरी कहानी कहता हूँ। मैं यह सोना बेचने के लिए इसकी नाव पर बैठा था। इस निर्लज्ज लोभी ने मुझे रात के समय सोये हुए को सहसा नदी में फेंकवा दिया। देव-कृपा से मैं बचकर आपके राज्य में आ पहुँचा।

(सब एक दूसरे की ओर साश्चर्य देखते हैं।)

सेठ—महाराज ! यह सब झूठी कहानी है। इससे भला कैसे

सिद्ध हुआ कि यह सोना इसका है ? किसी और के भ्रम में मुझे फाँस रहे हैं।

न्याय-मंत्री—तट-रक्षक ! आप यह बतायें कि यह सोना आपका कैसे प्रमाणित हो सकता है।

तट-रक्षक—मैं इस सोने को अपना सिद्ध कर सकता हूँ। यदि यह सेठ इन सोने के ईंटों को अपनी बताता है तो यह इन पर अपना कोई चिह्न बताये।

प्रधान मंत्री—क्यों सेठ, इन ईंटों पर अपना कोई चिह्न दिखा सकते हो ?

सेठ—(ईंटों को ध्यान से देखते हुए) प्रधान मंत्री जी ! इन ईंटों पर भला क्या चिह्न होता ? हमने तो कभी कोई चिह्न नहीं लगाया। इन ईंटों पर पहले भी कोई चिह्न नहीं लगा है।

तट-रक्षक—राजन् ! यदि मैं इन ईंटों पर अपना चिह्न दिखा दूँ तो वह प्रमाण पर्याप्त होगा ?

बाहुदेव—चिह्न देख कर कहा जा सकता है।

तट-रक्षक—तनिक ठहरिये। (श्रीवत्स एक कर्मचारी के हाथ से पैने लोहे का टुकड़ा लेकर ईंटों के जोड़ पर हथौड़ी से चोट लगाता है। ईंटों के दो टुकड़े होकर अलग गिर पड़ते हैं और दोनों ईंटों पर कुछ अक्षर खुदे हुए दिखाई देते हैं।) महाराज ! यह अक्षर मेरे हाथ के लिखे हैं। मैं यही अक्षर आपके सामने लिखकर दिखा सकता हूँ।

(आकाशवाणी सुनाई देती है)

"लिखने की कोई आवश्यकता नहीं। अभी सब पहेली सुलझ जाती है।"

(सब सविस्मय ऊपर देखते हैं। सहसा लक्ष्मी, शनि, सुरभि, नारद सभा में खड़े दिखाई देते हैं। यथोचित अभिवादन आदि के पश्चात)

लक्ष्मी—राजन ! हमें यहाँ देखकर चकित न हो। इन महानुभाव ने ये सोने की ईंटें सुरभि-देवी के आश्रम की मिट्टी से बनाई हैं ! ये अक्षर भी इसी बात की पुष्टि करते हैं।

प्रधान मंत्री—(ईंट के दोनों टुकड़े उठा कर पढ़ते हैं) सुरभि देवी का आश्रम ! श्रीवत्स !

बाहुदेव—श्रीवत्स ? श्रीवत्स कौन ?

लक्ष्मी—श्रीवत्स को नहीं जानते ! वही जो प्राग्देश के राजा हैं।

शनि—और जिसने मेरी कुमति से असंख्य कष्टों को सहन किया है।

नारद—राजन् ! आप यह सुनकर प्रसन्न होंगे कि आपके जामाता प्राग्देश-नरेश श्रीवत्स हैं, कोई साधारण पुरुष नहीं। लक्ष्मी-शनि कलह के कारण इनकी यह दशा हुई है।

(सब श्रोतागण यह वृतांत सुनकर विस्मित हो जाते हैं)

बाहुदेव—महाराज श्रीवत्स ! (हाथ जोड़कर) मैं क्षमा-प्रार्थी हूँ। मेरा अपराध क्षमा हो।

शनि—बाहुदेव ! आपका इसमें कुछ अपराध नहीं। आपने

जो कुछ किया वह मेरे आदेशानुसार किया। श्रीवत्स के कर्त्तव्य-पथ पर आरूढ़ रहने पर मैं प्रसन्न हूँ। अनेक संकटों में पड़ने पर भी इन्होंने अपना निर्णय नहीं बदला। मैं इनका किया निर्णय स्वीकार करता हूँ।

नारद—नारायणनारायण !!

(दो कर्मचारियों सहित चिंता और भद्रा का प्रवेश। यथोचित अभिवादन आदि के पश्चात्)

भद्रा—पिता जी ! (चिंता की ओर संकेत करते हुए) ये मेरी बड़ी बहिन हैं। इन्हें यह दुष्ट सेठ हर ले गया था और इन पर अत्याचार करना चाहता था। इन्होंने अपने सतीत्व के प्रभाव से सूर्य देव से प्रार्थना की कि मैं कोढ़ी हो जाऊँ। इस प्रकार ये अपने धर्म की रक्षा कर सकीं।

बाहुदेव—प्रधान मन्त्री ! (सेठ की ओर देखकर) इस दुष्ट को बंदी-गृह में डाल दो।

शनि—राजन् ! इस शुभ अवसर पर इस सेठ को भी मुक्त कर दो। यह भी मेरी प्रेरणा से ऐसा कर रहा था।

लक्ष्मी—श्रीवत्स ! अब शीघ्र ही अपने राज्य को सँभालो। तुम्हारी प्रजा प्रतीक्षा कर रही है।

शनि—श्रीवत्स ! चिंता !! मेरे कारण तुम दोनों को अनेक दुःख सहने पड़े। तुम इस घटना को भूल जाओ।

श्रीवत्स—शनि देव ! आप प्रसन्न हैं, हमें इससे संतोष हुआ।

नारद—तुम्हारी उदारता और न्यायपरता पर इंद्र भी मुग्ध हैं। यह घटना संसार में सदा अमर रहेगी। कष्ट में पड़े हुए मानव तुम्हारा नाम स्मरण कर धीरज पायेंगे। पुत्री चिंता! तुम्हारा नाम नारी जाति के लिए पति-प्रेम और सहनशीलता का आदर्श स्थापित रखेगा। तुम पर लक्ष्मी की सदा कृपा रहे! आओ, आज इस मंगलमय अवसर पर मिलकर लक्ष्मी का कीर्तन करें।

' जग में है लछमी का राज '

(पटाक्षेप)